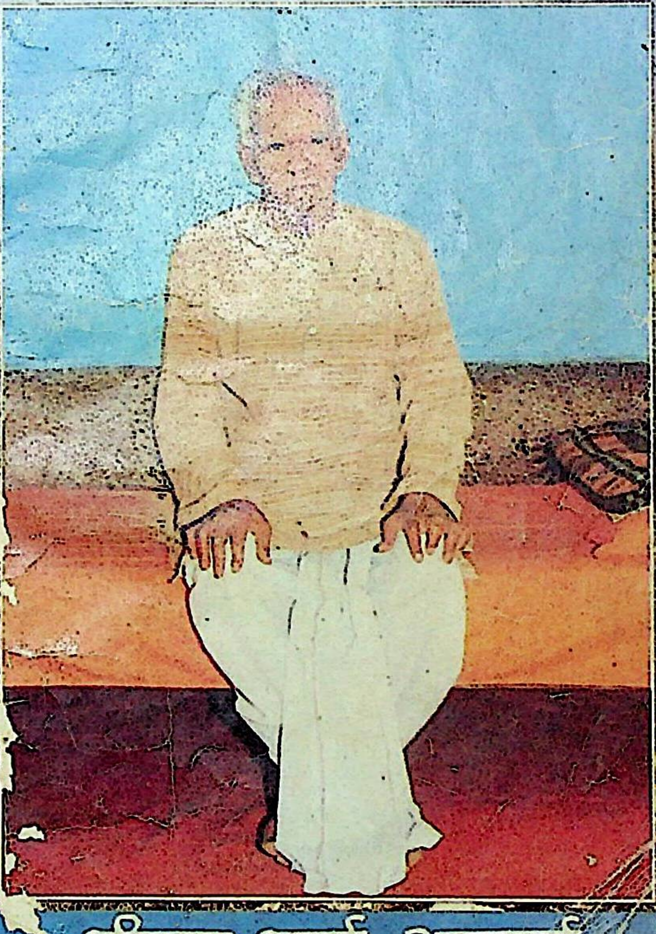
मरने के बाद हमारा क्या होता है ?



-श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ

मरने के बाद हमारा क्या होता है ?

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक:
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि
मथुरा

वीं बार) १९९७ (मूल्य ३-०० रु०

भूमिका

जीव अमर है । उसकी मृत्यु का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता । अविनाशी आत्मा सदा से है और सदा तक रहेगा । शरीर की मृत्यु को हम लोग अपनी मृत्यु मानते हैं, बस इसीलिए डरते और भयभीत होते हैं यदि अन्तःकरण को यह विश्वास हो जाय कि आज की तरह हमें आगे भी जीवित रहना है तो डरने की बात नहीं रह जाती ।

मृत्यु का भय अन्य सब भयों से अधिक बलवान है, आदमी मौत के डर से थर-थर काँपा करता है । इसका कारण परलोक सम्बन्धी अज्ञान है । इस पुस्तक में उस अज्ञान को हटाने का प्रयत्न किया गया है और उस जिज्ञासा की पूर्ति करने की चेष्टा की गई है जिसमें मनुष्य अपने भविष्य के बारे में जानने के लिए आतुर रहता है ।

परलोक विज्ञान के सम्बन्ध में हाथों हाथ प्रमाण देकर साबित करना कठिन है, क्योंकि यह विषय जड़ विज्ञान की पहुँच से ऊँचा है । सर ओलिवर लाज जैसे परलोक विद्या विशारद को इस विद्या के सम्बन्ध में यही कहना पड़ा है कि-''इस आत्मविज्ञान को हर समय प्रत्यक्ष कर दिखाना कठिन है ।'' जो पाठक स्थूल इन्द्रियों को ही ज्ञान का परम साधन मानते हैं, उनके लिए परलोक सम्बन्धी यह पुस्तक कल्पना से अधिक प्रतीत न होगी, किन्तु जो दिव्यदर्शियों और तत्वज्ञानियों के वचनों पर विश्वास करते हैं, उनके लिए इसमें विश्वसनीय सामग्री है, क्योंकि अनेक उच्च आत्माओं के निकट सम्पर्क में रह कर जो ज्ञान हमने प्राप्त किया है, उसी का इसमें निचोड़ है ।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

मरने के बाद हमारा क्या होता है ?

– मृत्यु का स्वरूप –

जीवन का प्रवाह अनन्त है । हम अगणित वर्षों से जीवित हैं, आं अगणित वर्षों तक जीवित रहेंगे । भ्रमवश मनुष्य यह समझ बैठा है कि जिर दिन बच्चा माता के पेट में आता है या गर्भ से उत्पन्न होता है, उसी समय रं जीवन आरम्भ होता है और जब हृदय की गति बन्द हो जाने पर शरीर निर्जीव हो जाता है तो मृत्यु हो जाती है । यह बहुत ही छोटा अधूरा और अज्ञान मूलव विश्वास है । आधुनिक भौतिक विज्ञान यह कहता बताया जाता है कि जीव र्क कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, शरीर ही जीव है । शरीर की मृत्यु के बाद हमारा कोइ अस्तित्व नहीं रहता, परन्तु बेचारा भौतिक विज्ञान स्वयं अभी बाल्यावस्था मे है । विद्युत्त की गति के सम्बन्ध में अब तक करीब तीन दर्जन सिद्धान्तों क प्रतिपादन हो चुका है । हर सिद्धांत अपने से पहले मतों का खण्डन करता है बेशक उन्होंने बिजली चलाई । दरअसल में अब तक ठीक-ठीक यह नहीं जाना जा सका कि वह किस प्रकार चलती है ? नित नई सम्मति बदलने वाले जड़ विज्ञान का भौतिक जगत में स्वागत हो सकता है पर यदि उसे हं आध्यात्मिक विषय में प्रधानता मिली तो सचमुच हमारी बड़ी दुर्गति होगी एक वैज्ञानिक कहता है कि शरीर ही जीव है । दूसरा मृतात्मा आश्चर्यजनव करतबों को पूरी पूरी तरह चुनौती देता है और अपने पक्ष को प्रमाणित करके विरोधियों का मुख बन्द कर देता है । तीसरे वैज्ञानिक के पास ऐसे अटूट प्रमाण मौजूद हैं जिनमें छोटे छोटे अबोध बच्चों ने अपने पूर्वजन्मों के स्थानों को औ सम्बन्धियों को इस प्रकार पहचाना है कि उसमें पुनर्जन्म के विषय में किसं प्रकार के संदेह की गुञ्जायश ही नहीं रहती । बालक जन्म लेते ही दूध पीने

लगता है यदि पूर्व स्मृति न होती तो वह बिना सिखाये किस प्रकार यह सब सीख जाता, बहुत से बालकों में अत्यल्प अवस्था में ऐसे अद्भुत गुण देखे जाते हैं जो प्रकट करते हैं कि यह ज्ञान इस जन्म का नहीं वरन् पूर्वजन्म का है ।

जीवन और शरीर एक वस्तु नहीं है । जैसे कपड़ों को हम यथा समय बदलते रहते हैं, उसी प्रकार जीव को भी शरीर बदलने पड़ते हैं । तमाम जीवन भर एक कपड़ा पहना नहीं जा सकता, उसी प्रकार अनन्त जीवन तक एक शरीर नहीं ठहर सकता । अतएव उसे बार-बार बदलने की आवश्यकता पड़ती है । स्वभावतः तो कपड़ा पुराना जीर्ण-शीर्ण होने पर ही अलग किया जाता है, पर कभी कभी जल जाने, किसी चीज में उलझकर फट जाने, चूहों को काट देने या अन्य कारणों से वह थोड़े ही दिनों में बदल देना पड़ता है । शरीर साधारणतः वृद्धावस्था में जीर्ण होने पर नष्ट होता है परन्तु यदि बीच में ही कोई आकस्मिक कारण उपस्थित हो जावें तो अल्पायु में भी शरीर त्यागना पड़ता है ।

मृत्यु किस प्रकार होती है ? इस सम्बन्ध में तत्वदर्शी योगियों का मत है कि मृत्यु से कुछ समय पूर्व मनुष्य को बड़ी बेचैनी, पीड़ा और छटपटाहट होती है क्योंकि सब नाड़ियों में से प्राण खिंचकर एक जगह एकत्रित होता है, किन्तु पुराने अभ्यास के कारण वह फिर उन नाड़ियों में खिसक जाता है, जिससे एक प्रकार का आघात लगता है, यही पीड़ा का कारण है । रोग, आघात या अन्य जिस कारण से मृत्यु हो रही हो तो उससे भी कष्ट उत्पन्न होता है । मरने से पूर्व प्राणी कष्ट पाता है चाहे वह जवान से उसे प्रकट कर सके या न कर सके । लेकिन जब प्राण निकलने का समय बिलकुल पास आ जाता है तो एक प्रकार की मूर्छा आ जाती है और उस अचेतनावस्था में प्राण शरीर से बाहर निकल जाते हैं । जब मनुष्य मरने को होता है तो उसकी समस्त वाह्य शक्तियाँ एकत्रित होकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं और फिर स्थूल शरीर से बाहर निकल पड़ती हैं । पाश्चात्य योगियों का मत है कि जीव का सूक्ष्म शरीर बैंगनी रंग की छाया लिए शरीर से बाहर निकलता है । भारतीय योगी इसका रंग शुभ्र ज्योति स्वरूप सफेद मानते हैं । जीवन में जो बातें भूल कर मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष्ठकों में सुषुप्त अवस्था में पड़ी रहती हैं वे सब एकत्रित होकर एक साथ निकलने के कारण जागृत एवं सजीव हो जाती है । इसलिए कुछ ही क्षण के अन्दर अपने समस्त जीवन की घटनाओं को फिल्म की तरह देखा जाता है । इस समय मन की

आश्चर्यजनक शक्ति का पता लगता है । उनमें से आधी भी घटनाओं के मानसिक चित्रों को देखने के लिए जीवित समय में बहुत समय की आवश्यकता होती, पर इन क्षणों में वह बिलकुल ही स्वल्प समय में पूरी पूरी तरह मानव पटल पर घूम जाती हैं । इस सबका जो सम्मिलित निष्कर्ष निकलता है वह सार रूप में संस्कार बन कर मृतात्मा के साथ हो लेता है । कहते हैं कि यह घड़ी अत्यन्त हीं पीड़ा की होती है । एक साथ हजार बिच्छुओं के दंश का कष्ट होता है । कोई मनुष्य भूल से अपने पुत्र पर तलवार चला दे और वह अधकटी अवस्था में पड़ा छटपटा रहा हो तो उस दृश्य को देखकर एक सहृदय पिता के हृदय में अपनी भूल के कारण प्रिय पुत्र के लिए ऐसा भयंकर काण्ड उपस्थित करने पर जो दारुण व्यथा उपजती है, ठीक वैसी ही पीड़ा उस समय प्राण अनुभव करता है क्योंकि बहुमूल्य जीवन का अक्सर उसने वैसा सदुपयोग नहीं किया जैसा कि करना चाहिए था । जीव जैसी बहुममूल्य वस्तु का दुरुपयोग करने पर उसे उस समय मर्मान्तक मानसिक वेदना होती है । पुत्र के करने पर पिता को शारीरिक नहीं, मानसिक कष्ट होता है, उसी प्रकार मृत्यु के ठीक समय पर प्राणी की शारीरिक चेतनाएँ तो शून्य हो जाती हैं पर मानसिक कष्ट बहुत भारी होता है । रोग आदि शारीरिक पीड़ा तो कुछ क्षण पूर्व ही, जबकि इन्द्रियों की शक्ति अन्तर्मुखी होने लगती है, तब ही बन्द हो जाती है । मृत्यु से पूर्व शरीर अपना कष्ट सह चुकता है । बीमारी से या किसी आघात से शरीर और जीव के बन्धन टूटने आरम्भ हो जाते हैं । डाली पर से फल उस समय टूटता है जब उसका डण्ठल असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार मृत्यु उस समय होती है जब शारीरिक शिथिलता और अचेतना आ जाती है । ऊर्ध्व रन्ध्रों में से अक्सर प्राण निकलता है । मुख, आँख, कान, नाक प्रमुख मार्ग हैं । दुष्ट वृत्ति के लोगों का प्राण मल-मूत्र मार्गों से निकलता देखा जाता है । योगी ब्रह्मरन्ध्र से प्राण त्याग करता है ।

शरीर से जी निकल जाने के बाद वह एक विचित्र अवस्था में पड़ जाता है । घोर परिश्रम से थका हुआ आदमी जिस प्रकार कोमल शय्या प्राप्त करते ही निन्द्रा में पड़ जाता है, उसी प्रकार मृतात्मा को जीवन भर का सारा श्रम उतारने के लिए एक निन्द्रा की आवश्यकता होती हे । इस नींद से जीव को बड़ी शान्ति मिलती है और आगे का काम करने के लिए शक्ति प्राप्त कर लेता है । मरते ही

नींद नहीं आ जाती, वरन् इसमें कुछ देर लगती है । प्राय: एक महीना तक लग जाता है । कारण यह है कि प्राणान्त के बाद कुछ समय तक जीवन की वासनाऐं प्रौढ़ रहती हैं और वे धीरे धीरे ही निर्बल पड़ती हैं । कड़ा परिश्रम करके आने पर हमारे शरीर का रक्त संचार बहुत तीव्र होता रहता है और पलंग मिल जाने पर भी उतने समय तक जागते रहते हैं, जब तक फिर रक्त की गति धीमी न पड़ जाय । मृतात्मा स्थूल शरीर से अलग होने पर सूक्ष्म शरीर में प्रस्फुटित हो जाता है, यह सूक्ष्म शरीर ठीक स्थूल शरीर की ही बनावट का होता है । मृतक को बड़ा आश्चर्य लगता है कि मेरा शरीर कितना हल्का हो गया है, वह हवा में पक्षियों की तरह उड़ सकता है और इच्छा मात्र से चाहे जहाँ आ जा सकता है । स्थूल शरीर छोड़ने के बाद वह अपने मृत शरीर के आस पास ही मंडराता रहता है । मृत शरीर के आस पास प्रियजनों को रोता बिलखता देखकर वह उनसे कुछ कहना चाहता है या वापिस पुराने शरीर में लौटना चाहता है, पर उसमें वह कृत्कार्य नहीं होता । एक प्रेतात्मा ने बताया है कि "मैं मरने के बाद बड़ी अजीव स्थिति में पड़ गया । स्थूल शरीर में और प्रियजनों में मोह होने के कारण मैं उसके सम्पर्क में आना चाहता था पर लाचार था । मैं सबको देखता था पर मुझे कोई नहीं देख सकता था, मैं सबकी वाणी सुनता था पर मैं जो बड़े जोर जोर से कहता था उसे कोई भी नहीं सुनता था । इन सब बातों से कुछ तो कष्ट होता था कुछ अपने नवीन शरीर के बारे में खुशी भी थी कि मैं कितना हल्का हो गया हूँ और कितनी तेजी से चारों ओर उड़ सकता हूँ । जीवित अवस्था में मैं मौत से डरा करता था, यहाँ मुझे डरने लायक कुछ भी बात मालूम नहीं हुई । सूक्ष्म शरीर में प्रस्फुटित होने के कारण पुराने शरीर से कुछ विशेष ममता न रही, क्योंकि नया शरीर पुराने की अपेक्षा हर दृष्टि से अच्छा था । मैं अपना अस्तित्व वैसा ही अनुभव करता था जैसा कि जीवित दशा में । कई बार मैंने अपने हाथ पावों को हिलाया-डुलाया और अपने अंग-प्रत्यंगों को देखा पर मुझे ऐसा नहीं लगा मानो मर गया हूँ । तब मैंने समझा कि मृत्यु में कुछ डरने की बात नहीं है, वह शरीर परिवर्तन की एक मामूली सुख साध्य क्रिया है ।"

जब तक मृत शरीर की अन्येष्टि क्रिया होती है, तब तक जीव बार बार उसके आस पास मँडराता रहता है । जला देने पर वह उसी समय उससे निराश होकर दूसरी ओर मन को लौटा लेता है, किन्तु गाढ़ देने पर वह उस प्रिय वस्तु

का मोह करता है और बहुत दिनों तक उसके इधर उधर फिरा करता है । अधिक अज्ञान और माया–मोह के बन्धन में अधिक दृढ़ता से बँधे हुए मृतक प्राय: श्मशानों में बहुत दिन तक चक्कर काटते रहते हैं । शरीर की ममता बार बार उधर खींचती है और वे अपने को सम्भालने में असमर्थ होने के कारण उसी के आस पास रुदन करते हैं । कई ऐसे होते हैं जो शरीर की अपेक्षा प्रियजनों से अधिक मोह करते हैं । वे मरघटों की बजाय प्रिय व्यक्तियों के निकट रहने का प्रयत्न करते हैं । बुड्ढे मनुष्यों की वासनाऐं स्वभावत: ढीली पड़ जाती हैं, इसलिए वे मृत्यु के बाद बहुत जल्दी निन्द्रा ग्रस्त हो जाते हैं, किन्तु वे तरुण जिनकी वासनाऐं प्रबल होती हैं, बहुत काल तक विलाप करते फिरते हैं, खासतौर से वे लोग जो अकाल मृत्यु, अपघात या आत्म हत्या से मरे होते हैं । अचानक और उग्र वेदना के साथ मृत्यु होने के कारण स्थूल शरीर के बहुत से परमाणु सूक्ष्म शरीर के साथ मिल जाते हैं इसलिए मृत्यु के उपरान्त उनका शरीर कुछ जीवित, कुछ मृतक, कुछ स्थूल, कुछ सूक्ष्म सा रहता है । ऐसी आत्माऐं प्रेत रूप से प्रत्यक्ष सी दिखाई देती हैं और अदृश्य भी हो जाती हैं । साधारण मृत्यु से मरे हुओं के लिए यह नहीं है कि वह तुरन्त ही प्रकट हो जावें, उन्हें उसके लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है और विशेष प्रकार का तप करना पड़ता है, किन्तु अपघात से मरे हुए जीव सत्ताधारी प्रेत के रूप में विद्यमान रहते हैं और उनकी विषम मानसिक स्थिति नींद भी नहीं लेने देती । वे बदला लेने की इच्छा से या इन्द्रिय वासनाओं को तृप्त करने के लिए किसी पीपल के पुराने पेड़ की गुफा, खण्डहर या जलाशय के आस पास पड़े रहते हैं और जब अवसर देखते हैं, अपना अस्तित्व प्रकट करने या बदला लेने की इच्छा से प्रकट हो जाते हैं । इन्हीं प्रेतों को कई तांत्रिक शव साधन करके या मरघट जगा कर अपने बस में कर लेते हैं और उनसे गुलाम की तरह काम लेते हैं, इस प्रकार बाँधे हुए प्रेत इस तांत्रिक से प्रसन्न नहीं रहते वरन् मन ही मन बड़ा क्रोध करते हैं और यदि मौका मिल जाय तो उन्हें मार भी डालते हैं । बंधन सभी को बुरा लगता है, प्रेत लोग छूटने में असमर्थ होने के कारण अपने मालिक का हुक्म बजाते हैं, पर सरकस के शेर की तरह उन्हें इससे दुख रहता है । आबद्ध प्रेत प्राय: एक ही स्थान पर रहते हैं और बिना कारण जल्दी जल्दी स्थान परिवर्तन नहीं करते ।

साधारण वासनाओं वाले प्रबुद्धचित्त और धार्मिक वृत्ति वाले मृतक अन्त्येष्टि क्रिया के बाद फिर पुराने सम्बन्धी से रिश्ता तोड़ देते हैं और मन को समझाकर उदासीनता धारण करते हैं । उदासीनता आते ही उन्हें निद्रा आ जाती है और आराम करके नई शक्ति प्राप्त करने के लिए निद्राग्रस्त हो जाते हैं । यह नींद तन्द्रा कितने समय तक रहती है, इसका कुछ निश्चित नियम नहीं है । यह जीव की योग्यता के ऊपर निर्भर है । बालकों और मेहनत करने वालों को अधिक नींद चाहिए, किन्तु बुड्ढे और आराम तलब लोगों का काम थोड़ी देर सोने से ही चल जाता है । आमतौर से तीन वर्ष की निद्रा काफी होती है । इसमें से एक वर्ष तक बड़ी गहरी निद्रा आती है, जिससे कि पुरानी थकान मिट जाय और सूक्ष्म इन्द्रियाँ संवेदनाओं का अनुभव करने के योग्य हो जावें । दूसरे वर्ष उसकी तन्द्रा भंग होती है और पुरानी गलतियों के सुधार तथा आगामी योग्यता के सम्पादन का प्रयत्न करता है । तीसरे वर्ष नवीन जन्म धारण करने की खोज में लग जाता है । यह अवधि एक मोटा हिसाब है । कई विशिष्ट व्यक्ति छः महीने में ही नवीन गर्भ में आ गये हैं, कई को पाँच वर्ष तक लगे हैं । प्रेतों की आयु अधिक से अधिक बारह वर्ष समझी जाती है । इस प्रकार दो जन्मों के बीच का अन्तर अधिक से अधिक बारह वर्ष हो सकता है ।

– परलोक कैसा है ? –

यह अन्यत्र बताया गया है कि परलोक का दूरी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । 'क्ष' किरणें *(X-Rays)* ठोस पदार्थों को चीरती हुई पार हो जाती हैं, हमें दीवार का पर्दा तोड़ना मुश्किल मालूम पड़ता है पर 'क्ष' किरणों के लिए यह पर्दा कुछ नहीं के बराबर है । गर्मी और सर्दी का प्रभाव बहुत अंशों में बाहरी प्रतिवन्धों को तोड़कर भीतर चला जाता है, इसी प्रकार सूक्ष्म तत्वों के लिए स्थूल वस्तुओं के कारण कुछ बाधा नहीं पड़ती । हवा का समुद्र, पृथ्वी के चारों ओर भरा हुआ है, पर हम उसे चीरते हुए जहाँ फिरते हैं, हमें वह भान भी नहीं होता कि हम हवा के बीच में इसी प्रकार भाग-दौड़ कर रहे हैं जैसे पानी में मछली । सम्भव है मछली भी पानी में ऐसे ही स्वतंत्र घूमती हो जैसे हम हवा के समुद्र में घूमते हैं । मृत आत्माऐं सूक्ष्म तत्वों की बनी हुई हैं, इसलिए वे ईथर

तत्व की भांति चाहे जहाँ आ जा सकती हैं । उसके निवासी स्वेच्छानुसार चाहे जहाँ भूमि, जल, पर्वत, ग्रह, नक्षत्र आदि के बीचों बीच या ऊपर नीचे भी रह सकते हैं और अपने रहने के लिए सब प्रकार की सुवधिायें वहाँ उत्पन्न कर सकते हैं ।

यह जानना चाहिए कि मृत प्राणी के साथ उसके विचार स्वभाव, विश्वास और अनुभव भी जाते हैं । घरों में रहने, कपड़े पहनने, भोजन करने आदि की क्रियाऐं जीवित मनुष्यों को जीवन भर करनी पड़ती हैं, इसलिए उनके यह विश्वास सुदृढ़ हो जाते हैं, यह बात एक साधारण मनुष्य के विचारों के बाहर की है कि कोई मनुष्य बिना घर, वस्त्र और भोजन के भी रह सकता है । जैसे विश्वासों के कारण सूक्ष्म शरीर और इन्द्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं वैसे ही विश्वासों के आधार पर परलोक वासी के लिए गृह, वस्त्र, आहार-विहार की भी व्यवस्था हो जाती है । वे समझते हैं कि हम घरों में रहते हैं, कपड़े पहनते हैं और भोजन करते हैं । यह सब पदार्थ उनकी भावना स्वरूप होते हैं । यदि कोई परमहंस संन्यासी निर्जन वन में वस्त्र रहित और कन्द मूल फल खाकर निर्वाह करता हो तो उसका परलोक भी वैसा ही होगा । भूत प्रेत किन्हीं विशेष स्थानों पर ठहर जाते हैं किन्तु साधारण क्रम के अनुसार चलने वाले प्राणी स्थान सम्बन्धी बन्धन में नहीं बँधते । वे एक स्थान पर रहते हैं किन्तु वह स्थान चाहे जहाँ हो सकता है ।

स्त्री और पुरुष का लिंग भेद बना रहता है । विश्वासों के आधार पर यह भी निर्भर है, जो पुरुष स्त्री भावना का आचरण करते हैं या जो स्त्रियाँ पुरुष भाव को हृदयंगम करती हैं वे कुछ काल नपुंसक की दशा में रहकर लिंग परिवर्तन कर लेते हैं और अगला जन्म परिवर्तित भावना के अनुसार होता है । यह अपवाद है । साधरणतः लिंग परिवर्तन करने की किसी जीव की रुचि नहीं होती । शरीर सम्बन्धी अयोग्यताएँ परलोक में हट जाती हैं और वे प्रायः तरुण दशा को प्राप्त हो जाते हैं । क्योंकि यह अयोग्यताएँ मन की नहीं वरन् एक शरीर में भी कुछ समय की हैं । इसलिए इन शारीरिक अयोग्यताओं का मन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता ।

परलोक में इच्छा करने पर कोई जीव किन्हीं दूसरे जीवों से मिल भी सकता है । इच्छा होने पर ही वे दूसरे परलोकवासी दिखाई देते हैं और उनसे विचार परिवर्तन करना सम्भव होता है । यह मिलन दो चेतनाओं का मिलन

होता है । विचारों का आदान-प्रदान ही हो सकता है । शरीर कोई किसी को नहीं देखता क्योंकि परलोक वासियों के सूक्ष्म शरीर वास्तव में देखने योग्य नहीं होते । घर, कपड़े, भोजनादि की हर जीव की अपनी कल्पना होती है उसका देखना भी दूसरे के लिए कठिन है । स्वर्ग-नर्क के दुख-सुख का दूसरा परिचय पाते हैं, पर यह नहीं देख सकते कि वह कुम्भीपाक नर्क में पड़ा हुआ है या रौरव में । स्वर्गवासी आत्माओं के शरीर में एक प्रकार का तेज होता है जिससे उनके सुखी होने का परिचय मिलता है, पर यह जानना कठिन है कि वह हूर गिरमाओं को जन्नत में हैं या सुरपुरी में, क्योंकि यह सब भी अपनी अपनी स्वतंत्र कल्पनाएँ हैं, दृश्य वस्तु इनमें से कुछ भी नहीं । मृतात्माएँ एक दूसरे से कह सुन सकती हैं, पर उनके लिए यह कठिन है कि दुख-सुख में भी हिस्सा बाँट सकें । कुछ आत्माएँ अपने पूर्व परिचितों मृतकों के साथ रहना पसन्द करती हैं और उनका एक समुदाय बन जाता है । ऐसे समुदाय नीचे लोक में ही होते हैं । उच्चलोकवासी जन्म-जन्मान्तरों में आकर्षित प्राणियों के साथ अपने सम्पर्कों का ध्यान करते हुए इन भ्रम बन्धनों की व्यर्थता को समझ जाते हैं और मोह जाल से दूर रहते हुए आत्मोन्नति का एकान्त प्रयत्न करते हैं । आत्माएँ किसी बाड़े में या किसी अन्य शासन के अधिकार में नही रहतीं, जीवों पर उनकी अन्तरात्माओं का ही शासन होता है ।

श्राद्ध करने या स्मारक बनाने का पुण्य फल उनके करने वालों को ही प्राप्त होता है । यह दान-पुण्य परलोक वासी की कुछ विशेष सहायता नहीं कर सकता क्योंकि इन उदार कार्यों के करने में अपना कुछ हाथ थोड़े ही है ? यह निश्चय है कि पुण्य फल का अदला-बदला नहीं हो सकता । जो करता है, वही भरता है । फिर भी परलोक वासी जब यह देखता है कि मेरे पूर्व सम्बन्धी मेरे प्रति कृतज्ञता और उपकार के भाव प्रदर्शित कर रहे हैं, तो उसे संतोष होता है और कभी उनके बस की बात हो एवं अवसर पावें तो उस उपकार भाव का किसी अदृश्य प्रकार से बदला चुकाते हैं । अपने प्रियजनों की सहायता के लिये जो कर सकते हैं, करते हैं । सम्बन्धियों के रोने-पीटने या शोक प्रदर्शन करने से मृतक को दुख होता है और उनकी शांति में बाधा पड़ती है । इसलिए उचित यह है कि मृतक के साथ मोह बन्धन शीघ्र से शीघ्र तोड़ लिए जाँय और केवल शांति की उच्च कामना की जाय ।

- स्वर्ग-नर्क -

ईश्वर बड़ा दयालु है, उसने प्राणियों को भरपूर स्वतंत्रता दी है कि वे इच्छापूर्वक कार्य करते हुए सत् चित् आनन्द की प्राप्ति करें । जो लोग गलती करते हैं उनसे परमात्मा क्रुद्ध नहीं होता और न किसी द्वेष भाव से दण्ड देता है, वरन् उसने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि जीव अपनी त्रुटियों से अनुभव प्राप्त करें और आगे के कार्य के लिए अधिक योग्यता प्राप्त करें । स्वर्ग-नर्क की रचना इसी दृष्टिकोण से की गई है । न्याय मूर्ति जज किसी को जेलखाने में बुरी नीयत से नहीं भेजते, उनकी हार्दिक इच्छा यह होती है कि वह आदमी त्रुटियों का परिणाम अनुभव करें और इससे शिक्षा ग्रहण करके भावी जीवन को उत्तमता से बिताने का प्रयत्न करें । मृत्यु के उपरान्त जीव को नर्क या स्वर्ग प्राप्त होता है, इस बात को संसार के समस्त धर्म एक स्वर से स्वीकार करते हैं । इसमें कोई संदेह की बात नहीं है । निश्चय ही हमें मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच में स्वर्ग-नरक का अनुभव प्राप्त करना पड़ता है, परमात्मा की इच्छा है कि इस व्यवस्था द्वारा पूर्व त्रुटियों का संशोधन हो जाय और भावी जीवन का मार्ग निरापद बन जावे ।

तीन वर्ष या जितना समय जीव को परलोक में ठहरने के लिए अदृश्य चेतना आवश्यक समझती है, उसका पहला एक तिहाई भाग निद्रा में व्यतीत होता है, क्योंकि पूर्वजन्म के परिश्रम की उस काल में इतनी थकान होती है कि प्राणी इस समय अचेतन सा हो जाता है, इस समय वह दण्ड शिक्षा का कुछ अनुभव उसी प्रकार नहीं कर सकता, जैसे कि क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश किया हुआ रोगी अपने शरीर की चीर-फाड़ का अनुभव नहीं करता । प्रारम्भिक एक तिहाई भाग बीत जाने पर जीव स्वस्थ होकर जागृत होता है और पीछे के कार्यक्रम पर ध्यान देता है । तीसरी तिहाई में वह अपने पिछले जीवन पर ध्यान देता है । सारे बुरे-भले कर्मों के परत उसकी चेतना के साथ बड़ी मजबूती के साथ चिपके हुए होते हैं । यह परत एक एक करके खुलते हैं तब तक उन कर्मों के बीज पक चुके होते हैं और वे फल के रूप से उपस्थित होते हैं । इस समय

वे केवल स्मरण मात्र ही नहीं होते वरन् अपना एक फल साथ लाते हैं । जीवन में हम जो कुछ बुरे-भले काम करते हैं साधारण तौर से कुछ दिन बाद उन्हें भूल जाते हैं, किन्तु साक्षी रूप आत्मा जो अन्तःकरण में बैठा हुआ है उन सब बातों को नोट करता है । मान लीजिए आपने चोरी की । चोरी करते समय आन्तरात्मा धिक्कारती है, पर हम उसे नहीं सुनते और चोरी कर डालते हैं । किसी ने उस चोरी को देख नहीं पाया, तदनुसार प्रत्यक्ष रूप से कुछ दण्ड न मिला । आत्मा के क्षेत्र में वह काम बीज रूप से उसी प्रकार बो जाते हैं जैसे खेत में गेहूँ । कुछ समय बाद बाहर का मस्तिष्क उस चोरी को भूल जाता है पर आत्मा नहीं भूलती । उसके खेत में वह बीज बराबर बढ़ता रहता है । खजूर की गुठली जब बोई गई थी तो उसका रूप दूसरा था किन्तु उसका परिवर्तित रूप खजूर का वृक्ष दूसरी तरह का होता है । पाप का स्वरूप दूसरा होता है किन्तु उसका परिवर्तित रूप दुख होते हैं ।

नरकों का वर्णन अनेक प्रकार से होता है । विभिन्न धर्मावलम्बी उनकी रूपरेखा में कुछ फर्क बताते हैं । कुम्भी पाक, वैतरणी, रौरव, दोजख, हैल आदि के वर्णन कुछ अलग हैं । यह विभिन्नताएँ अधूरी हैं । फिर भी सत्य हैं । हमारा मत है कि हर प्राणी के लिए अलग प्रकार का नरक होना सम्भव है । इस तरह जितने प्राण हो चुके, उतने नरक हुए होंगे और आगे जितने होने वाले हैं, उतने नये होंगे । कारण यह है कि हर व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग होता है । एक पण्डित जी को पाखाने में बन्द कर दिया जाय तो उन्हें मृत्यु के समान कष्ट होगा, पर एक महतर को दिन भर टट्टी साफ करते रहना कुछ भी नहीं अखरता । एक मनुष्य को छोटा सा फोड़ा जो जाय तो वह बड़ा दुख का अनुभव करेगा, दूसरे वे भिखारी होते हैं जो अधिक भिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने घावों को बढ़ाते हैं, यदि उनका फोड़ा अच्छा हो जाय तो उन्हें दुःख होता है । फांसी-मृत्यु के दण्ड से कुछ लोग अत्यन्त भयभीत होते हैं, किन्तु कुछ लोग फांसी के फन्दे को प्यार से चूमते हैं और गीत गाते हुए रस्से को अपने हाथ से गले में बाँधते हैं । कुम्भीपाक के बारे में कहा जाता है कि यह नरक भीतर पोले कुएँ की तरह होता है और उसके ऊपर के भाग में एक छोटा सा छेद होता है । कुआँ खोदने वाले या कुएँ की कोठी पानी में चलाने वाले यदि इस नरक में बन्द कर दिए जावें तो उन्हें कुछ भी बुरा न लगेगा । एक आदमी

में चाँटा मार दिया जाय तो उसे तलवार के आघात जैसा दु:ख होगा किन्तु दूसरे में पचास जूते मारे जाँय तो भी दस मिनट बाद हँसता नजर आवेगा । इन्हीं सब कारणों से अलग अलग मानसिक स्थिति वाले लोगों के लिए अलग अलग प्रकार के नरकों की आवश्यकता है ।

पुराणों में ऐसा वर्णन है कि यमदूत घसीट कर नरक में ले जाते हैं । ये यमदूत कोई स्वतन्त्र प्राणी नहीं है केवल जीव के मानस पुत्र हैं । अन्त:करण अपने क्रम परिपाक में इन यमदूतों को भी उपजाता है । यह दूत केवल उतने ही दिन तक जीते हैं जितने दिन तक प्राणी को नरक में रहने की आवश्यकता होती है, कार्य समाप्त होते ही वह मर जाते हैं । एक के लिए पैदा हुए यमदूत दूसरे को दण्ड देने के लिए जीवित नहीं रहते । वास्तविक बात यह है कि परलोक में भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है और आध्यात्मिक जीवन प्रस्फुटित रहता है । वैज्ञानिकों के मत से वाह्य मन मर जाता है और अन्तर्मन जीवित रहता है । वकीलों की काट–छांट, पण्डितों की शास्त्रार्थ शक्ति यहाँ ढूंढ़ने पर भी दिखाई नहीं देती । छिपाने का दम्भ बिलकुल विदा हो जाता है । जिस अन्तरात्मा में पाप बीज बोये थे वह खेत प्रौढ़ रूप से उस प्रकार सचेत हो जाता है जैसे कि जीवित अवस्था में वाह्य मस्तिष्क । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय, दसों इन्द्रियाँ इन सबके सम्मिश्रण से बना हुआ सूक्ष्म शरीर उस समय वैसा ही अचेतन रहता है जैसा कि जीवित अवस्था में गुप्त मस्तिष्क । हम देखते हैं कि एक मैस्मरेजम करने वाला बाहरी मस्तिष्क को निद्रित कर देता है और भीतरी मस्तिष्क को यह आज्ञा देता है कि 'तुम पानी में तैर रहे हो' तो वह व्यक्ति बिलकुल यही अनुभव करता है कि मैं पानी में तैर रहा हूँ । सचमुच पानी में तैरने और इस झूठ–मूठ के तैरने में रत्ती भर भी फरक उसे मालूम नहीं होता । यही बात उस नरक की है । उस नरक की, उन यमदूतों की कोई अलग सत्ता नहीं होती और न परलोक में कोई अलग न्यायाधीश, जज, मुंशी, पेशकार बैठते हैं । प्रतिदिन अरबों खरबों जीव मरते हैं, इन सबको दण्ड देने के लिए उनसे दूने चौगुने तो यमदूत चाहिए और असंख्य दफ्तर, जेलखाने, नरक आदि । इतने अलग बखेड़ों का 'स्वतंत्र रूप' से होना किसी प्रकार सम्भव और सत्य दिखाई नहीं पड़ता । बेशक हर व्यक्ति के लिए अलग अलग नरक हो सकते हैं क्योंकि वह उसके साथ पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं ।

अन्तरात्मा में जमे हुए पाप-संस्कार प्रकाश के रूप में जब प्रकट होते हैं इतनी शक्ति रखते हैं कि सूक्ष्म शरीर को बलात् उसके सन्मुख आना पड़ता । सर्प के नेत्र-तेज से खिंचकर पक्षी उसके मुख में चले आते हैं । सम्भव है अपने मन में उस समय ऐसा ख्याल करते हों कि हमें कोई स्वतंत्र जीव पकड़ ऌए जा रहा है । कर्मफल की भोगनीय शक्ति द्वारा फल पाने के लिए आकर्षित क़ुए जाते समय सम्भव है सूक्ष्म शरीर ऐसा ख्याल करता हो कि कोई यमदूत झे पकड़ कर खींचे लिए जा रहे हैं । इन यमदूतों का रंग-रूप, आकार-प्रकार ी अलग हो जाता है । हिन्दू के लिए तिलक लगाये हुए गदा धारण किये हुए, ाक्षसों की आकृति के हिन्दू आते हैं । मुसलमानों के फरिस्ते दाढ़ी रखते हैं और ़ायद टर्की टोपी भी लगाये हुए होते हैं । अंग्रेजी यमदूत कोट, टोपी, नैक्टाई से ुसज्जित होते हैं । यह दूत बातचीत भी हिन्दी, अरबी, अंग्रेजी या उस भाषा में क़रते हैं जिससे कि वह पूर्व जन्म में बोलता है । उनकी आकृतियाँ भी अलग भलग विश्वासों के कारण अलग होती हैं । एक व्यक्ति बड़े दाँतों में दिलचस्पी .खता है, दूसरी बड़ी आँखों में, तो एक का यमदूत बड़े दाँतें वाला होगा, दूसरे क़ा बड़ी आँखों वाला । यह यमदूत जिन्हें "संस्कारों का तेज" भी कह सकते हैं । सूक्ष्म शरीर उसकी इच्छा के विरुद्ध भी दण्ड देने के लिए हाजिर करते हैं । दुष्कर्मों का फल है-दुख । सूक्ष्म शरीर को वेदना, पीड़ा, कष्ट देने के लिए अन्तरात्मा एक स्वतन्त्र नरक बना देती है । उनमें गिद्ध, कौए, खोंट खाने वाले, वैतरणी पार करने, उलटे लटकने, पिटने, आग में जलने के दृश्य उपस्थित होते हों या केवल अपमान करने, खरी-खोटी सुनाकर लज्जित करने की व्यवस्था होती हो । यह अलग अलग मानसिक स्थिति के ऊपर निर्भर है । इस नारकीय यन्त्रणा का मन्तव्य यह है कि जीव दुख अनुभव करे । पाप कर्म और उनके फ़ल इन दोनों को साथ साथ देखकर वह यह समझ ले कि इसका यह फल होता है । दण्ड कितने समय तक और कितनी मात्रा में मिलना चाहिए इसका माप यह है कि जितने से वह अपना सुधार कर ले । जज छोटे अपराधों के लिए छोटी सजा देता है और बड़े अपराधों के लिए बड़ी । कारण यह है कि छोटे अपराध वालों की मनोभूमि पाप में अधिक लिप्त नहीं समझी जाती, इसलिए उसका सुधार शीघ्र और थोड़े दण्ड से हो जाता है, किन्तु गुरुतर अपराध करने वालों की कठोर मनोभूमि में से आदतों को उखाड़ने के लिए

अधिक परिश्रम और समय चाहिए । इसी दृष्टि से नरक की यातनाओं की सीमा होती है । दुष्ट कर्मों के परत एक एक करके उखड़ते आते हैं और अपना प्रभाव दिखाकर नष्ट हो जाते हैं । सूक्ष्म शरीर में इन्द्रियाँ भी होती हैं और मन भी इसलिए शारीरिक पापों के लिए शारीरिक दण्ड और मानसिक पापों के लिए मानसिक वेदना प्राप्त होती है । जैसे कि अधिक खा लेने से अपने आप पेट मे पीड़ा होती है, मिर्च के सेवन से अपने आप दाह होता है, वैसे पाप कर्मों का फल प्राप्त करने की व्यवस्था अन्तरात्मा स्वमेव ही कर लेती है, इसके लिए किसी दूसरे की जरूरत नहीं पड़ती । जो पाप प्रकट हो जाते हैं उनका फल तो प्रायः जीवित अवस्था में ही मिल जाता है किन्तु जो पाप भुगत नहीं पाते उनको परलोक में भुगतना पड़ता है । प्रभु ने ऐसी व्यवस्था की है कि नवीन जन्म धारण करने से पूर्व ही जीव अपने पिछले अधिकांश पापों को भुगत ले और अगले जन्म के लिए पवित्र होकर जावे, ताकि अगला जीवन इन पाप भारों के दुष्परिणाम से मुक्त हो । सेनापति अपने घायल सिपाहियों को तब तक अस्पताल में रखता है जब तक उसके घाव भर न जाँय क्योंकि यदि घायल को ही पुनः युद्ध में भेज दिया जावे तो वह सेनापति का उद्देश्य पूरा न कर सकेगा उसके लिए हथियार चलाना तो अलग रहा अपने घावों की कराह से ही फुरसत न मिलेगी । इसलिए कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़कर (जिनका वर्णन पुनर्जन्म अध्याय में होगा) प्रायः सारे पाप परलोक में भुगत जाते हैं और जीव निर्मल बन जाता है । नरक का केवल इतना ही लाभ नहीं है कि पाप क्षीण हो जावें वरन् यह भी उद्देश्य है कि आगे के लिए बुरी आदतें छूट जांय और गलती के परिणाम का स्मरण रहे । चोरी करते समय चोरों के कण्ठ सूख जाते हैं दुराचारियों के पाँव काँपने लगते हैं, हत्यारों की धुकधुकी चलने लगती है, यह पूर्वजन्मों में प्राप्त हुए दण्डों का सूक्ष्म स्मरण है । पर हाय, लोग उस आन्तरिक आवाज को बिलकुल भुला देते हैं और फिर उसी पाप के पैशाचिक फन्दे में फँस जाते हैं ।

– स्वर्ग –

जिस प्रकार पाप कर्मों का फल नरक है, उसी प्रकार शुभ कर्मों का फल स्वर्ग है । पाप क्या है और पुण्य क्या ? यह प्रश्न बड़ा पेचीदा है, इस पर एक स्वतन्त्र पुस्तक छपी है । इस समय तो इतना ही समझ लेना चाहिए कि प्रेम तथा हार्दिक पवित्रता के साथ किये हुए कार्य पुण्य एवं स्वार्थ पाखण्ड के साथ किये हुए कार्य पाप हैं । पाप-पुण्य की व्याख्या बुद्धि के द्वारा ठीक न हो सके तो भी अन्तरात्मा उसे जानता है । 'गूंगा' मनुष्य यदि मिठाई और नमकीन का स्वाद न वता सके; तो भी उस स्वाद को जानता है । पुण्य कर्मों से तत्क्षण आत्मा में एक शांति प्राप्त होती है उसके विरुद्ध पाप कर्मों में एक जलन उठती है । मजहबी कर्मकाण्ड मन की पवित्रता में कुछ सहायता दे सकते हैं, पर वे स्वयं कोई धर्म नहीं हैं । शंख फूंकने या घड़ियाल टनटनाने से कुछ धर्म नहीं होता, इससे मनोभूमि को पवित्र करने में कुछ सहायता मिलती है । यदि किसी का मन ऐसा दुष्ट हो कि उसके अन्दर दुर्भावनाऐं ही उठती रहें तो कोई भी कर्मकाण्ड उसे स्वर्ग नहीं पहुँचा सकता । अज्ञानी लोग मजहबी कमकाण्डों को स्वर्ग का साधन समझते हैं । यथार्थ में वह बहुत ही तुच्छ साधनमात्र हैं । मजहबी रीति-रिवाज धर्म नहीं हो सकतीं, दया, प्रेम, उदारता, सत्य परायणता धर्म के अंग हैं । आत्मा को संतोष देने वाली आंतरिक सद्वृत्तियाँ ही पुण्य कही जा सकती हैं और उनके द्वारा ही स्वर्ग प्राप्त होना सम्भव है । अन्ध विश्वासों में पड़े रहना अंधेरे में भटकने के बराबर है । जैसे जीवन में अन्य अनेक निष्प्रयोजन कार्यों में हम अपना समय नष्ट करते हैं, वैसे कितनी ही महजब परम्पराएँ भी ऐसी ही हैं जिनमें बिलकुल व्यर्थ समय बरबाद होता है और उनसें परलोक का रत्ती भर भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।

शुभ कार्यों से आन्तरिक प्रसन्नता होती है, यह प्रसन्नता परलोक में स्वर्ग रूप में उसी प्रकार प्रस्फुटित होती है, जैसे पाप कर्म नरक के रूप में । नरक के यय में जैसी कल्पना हमारी होती है, वे प्राय: वैसे ही उससे मिलते-जुलते

दिखाई देते हें, उसी प्रकार स्वर्ग की कल्पना भी सत्य है । धर्मात्मा हिन्दू को बैकुण्ठ, इन्द्रलोक का सुख मिले और सुकर्मों से मुसलमान को गिलमाओं वाली जन्नत मिले तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि स्वर्ग नरक हमारे आज के दृष्टिकोण के अनुसार कल्पना मात्र हैं, चाहे कल्पनाऐं उस समय सत्य ही प्रतीत होती हों । स्वर्ग सुख भी नियत समय तक ही रहता है, स्वर्ग का आनन्द मिलने का उद्देश्य यह है कि उसकी आत्मिक योग्यता अधिक चैतन्य एवं उत्साहित होकर आगामी जीवन में अधिक सूक्ष्म बन जावे । स्वर्ग सुख के अधिकारी जो व्यक्ति होते हैं उनकी तुच्छ इन्द्रिय लिप्साऐं पहले ही शान्त हो जाती हैं, इसलिए जैसा कि अज्ञानी समझते हैं, स्वर्ग लोक इन्द्रिय वासनाऐं तृप्त करने की सामग्री से ही भूरपूर है, वैसा ही नहीं होता । इन्द्रियों के गुलाम और वासना के कीड़े स्वर्ग सुख से बहुत दूर रहते हैं । मद्यपान, वेश्यागमन, मैथुन आदि का नाम ही यदि स्वर्ग में हो तो, ऐसे स्वर्ग के लिए इतना तप करने की कुछ आवश्यकता नहीं, वह कुछ पैसा खर्च करके जहाँ भी चाहे जब प्राप्त किया जा सकता है । यथार्थ में स्वर्ग सुख इन्द्रियों का सुख नहीं वरन् अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) का आनंद है । यह इन्द्रिय सुख की अपेक्षा बहुत ऊँचे दर्जे का है ।

आध्यात्म तत्व के जिज्ञासु जानते होंगे कि आत्मा में अनन्त शक्ति है । ईश्वर का अंश किसी प्रकार अशक्त नहीं है । वह इच्छा मात्र से ही स्वर्ग-नर्क की रचना कर लेता है, इसमें आश्चर्य और अविश्वास की कुछ बात नहीं है । ईश्वर ने इच्छा की कि "एकोहं बहुस्याम" मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ, बस वह दृश्य जगत के रूप में प्रकट हो गया । आत्मा इच्छानुसार जागृत अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्ति अवस्था की रचना करता है । जन्म-मरण को स्वर्ग बनाता है, उसी प्रकार स्वर्ग-नरक का निर्माण कर लेता है, इच्छा से बन्धन में बँधता है और इच्छा से ही मुक्त हो जाता है यह सब बातें उनकी निजी शक्ति के अन्तर्गत हैं ।

– पुनर्जन्म की तैयारी –

परलोक में रहने की अवधि के पहले भाग में विश्राम, दूसरे में स्वर्ग–नरक होते हैं, तीसरा भाग पुनर्जन्म की तैयारी में व्यतीत होता है । स्वर्ग–नरक भोगने के बाद आगामी जन्म के लिए जीव को विशेष प्रोत्साहन मिलता है । नरक भोगने वालों के साधारण पाप तो प्रायः नष्ट हो जाते हैं, किन्तु आदतें शेष रह जाती हैं । इन आदतों को आध्यात्मिक भाषा में संस्कार के नाम से पुकारा जाता है । यह आदतें तब तक नहीं छूटतीं जब तक कि जीव उन्हें ज्ञानपूर्वक पहचान कर छुड़ाने का वास्तविक प्रयत्न न करे । बंधन के कारण यही संस्कार हैं । जीव स्वतन्त्र है, वह अपनी इच्छानुसार संस्कार बनाता है और उन्हीं में जकड़ा रहता है । यह माया और कुछ नहीं, अज्ञान का एक पर्यायवाची शब्द है । अपने आपको खुद अपने ही अज्ञान के बंधन में उलझा कर दुखी होना बड़ी विचित्र बात है । इसी गोरखधंधे को दुस्तर माया के नाम से पुकारा गया है ।

शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के बाद भी उसके पूर्व संस्कार नहीं मिटते । जैसे एक जुआरी धन–सम्पत्ति हार जाने पर भी जुआ खेलने की इच्छा करता है, शराबी अनेक कष्ट सहकर भी मद्यपान की ओर लालायित रहता है, उसी प्रकार पिछली आदतों के कारण जीव पुनर्जन्म के लिए स्थान तलाश करता है । यह मध्यम श्रेणी के व्यक्ति प्रायः पुनर्जन्म जैसी स्थिति के वातावरण में आकर्षित होते हैं । मान लीजिए एक व्यक्ति इस जन्म में किसान है, सारी उम्र उसके मन पर खेती के संस्कार जमते रहे अब वह अगले जन्म में भी दुकानदार होने की अपेक्षा किसानी ही पसंद करेगा । ऐसा नहीं समझना चाहिए कि कोई अन्य शक्ति बलात् जन्म दे देती है । जीव स्वयं अपनी इच्छा से संस्कारों के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण करता है । ऊपर उड़ता हुआ गिद्ध जैसे तीक्ष्ण दृष्टि से मृत पशु को तलाश करता फिरता है, उसी प्रकार जीव निखिल आकाश में अपना रुचिकर वातावरण ढूँढ़ता फिरता है । पहले यह बताया जा चुका है कि तर्क, बहस का चुनाव करने वाली भौतिक बुद्धि परलोक में नहीं रहती इसलिए वह चालाकियाँ नहीं जानता और अपने स्वभाव के विपरीत ऊँची

या नीची स्थिति की ओर नहीं खिंचता । छोटा बालक राजमहल की अपेक्षा अपनी झोंपड़ी को पसंद करता है, उसी प्रकार किसी व्यापारी संस्कारों का जीव राजघर में जन्म लेने की अपेक्षा व्यापारी परिवार में शामिल होना पसंद करता है । आधे से अधिक मनुष्य प्राय: अपने पूर्व घर या परिवार में ही जन्म लेते हैं । यदि पूर्व घर में उसे अपमानित, लांछित या बहिष्कृत न किया गया हो तो वह उसी में या उसके आस-पास जन्म लेना चाहता है । दूरी के सम्बन्ध में भी यही बात है । पूर्व जन्म के प्रदेश में रहना ही सब पसंद करते हैं, क्योंकि भाषा, भेष, भाव की गहरी छाप उनके मन पर अंकित होती है । इटली का मनुष्य भारतवर्ष में या भारतवर्ष का टर्की में जन्म लेना पसन्द न करेगा । कोई विशेष ही कारण हो तो बात दूसरी है ।

हमारी स्थूल इन्द्रियों के लिए यह पहचानना कठिन है कि किन स्थानों में कैसी मानसिक स्थिति और आन्तरिक वातावरण है पर परलोकवासी इस बात को बड़ी आसानी से पहचान लेते हैं । वे जहाँ ठीक स्थिति देखते हैं उस परिवार के आसपास डेरा डालकर बैठ जाते हैं । परलोकवासियों को पिछले कई जन्मों का भी स्मरण हो आता है । यदि वे पुराने घरों में अधिक स्नेह रखते हैं तो उनकी ओर खिंच जाते हैं । बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उन परिवारों की ओर अपनी मनोवृत्ति में अन्तर आ जाता है तो भी वे कभी कभी खिंच जाते हैं । किसी विद्वान् कुल में एक मूढ़ का जन्म लेना या असुर दल में महात्मा का पैदा होना, दो कारणों को प्रकट करता है-(१) या तो वह कुछ पीड़ियों के उपरान्त बदल गया है और जीव के संस्कार पुराने ही मौजूद हैं, (२) या वह जीव दूसरे ढाँचे में ढल गया है और केवल व्यक्तिगत स्नेह के कारण उस कुल में खिंच आया है । हम बार बार दुहरा चुके हैं कि जीव स्वतंत्र है, वह अपने आचरणों से संस्कारों में आसानी से परिवर्तन कर सकता है । जब किसी परिवार में कोई विपरीत स्वभाव की सन्तान पैदा हो तो समझना चाहिए कि या तो यह कुछ बदल गया या वह जीव प्राचीन मोह के कारण ही उसे बेमेल संयोग मिला है ।

जिस परिवार में जन्म लेना जीव पसंद कर लेता है, उसके आस पास मँडराने लगता है, अवसर की प्रतीक्षा करता है । जब किसी स्त्री के पेट में गर्भ की स्थापना होती है तो वह उसमें अपनी सत्ता को प्रवेश करता है और नौ मास

गर्भ में रहकर संसार में प्रकट हो जाता है । कई तत्वज्ञों का मत है कि यह गर्भ पर अपनी सत्ता जमाता है और पूरी तरह शरीर में तब प्रवृत्त होता है जब बालक पेट से बाहर आ जाता है । हमारा मत है कि संभोग के समय रज-वीर्य का सम्मिलन होकर यदि गर्भ कलल बन जाय तो उसमें कुछ ही क्षण उपरान्त जीव अपना अधिकार कर लेता है और गर्भ में रहने लगता है । यह समझना ठीक नहीं कि गर्भ में बालक को बड़ा कष्ट होता है । क्योंकि उस समय तक गर्भ का मस्तिष्क और इन्द्रियाँ अविकसित होने के कारण जीव को पूरी तरह बन्धित नहीं करते और जीव का कुछ भी विशेष बन्धन नहीं होता । वह उदर में घोंसला रखता है पर अपनी चेतना से चारों ओर परिभ्रमण कर सकता है । जन्म लेने के कुछ ही समय पूर्व जब गर्भ की इन्द्रियाँ पूर्णतः परिपक्व हो जाती हैं तो जीव की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है । तब वह तुरन्त ही बाहर निकलने का प्रयत्न करता है, इसी समय को प्रसव काल कहा जाता है ।

कभी कभी एक परिवार में जन्म लेने के लिए कई जीव इच्छुक होते हैं । उन्हें क्रम से आना होता है । अमुक के गर्भ में जन्म लेने की इच्छा रखते हुए भी यदि उसका क्रम न हो या वह गर्भ धारण करने में असमर्थ हो तो फिर काम चलाऊ उपाय ढूँढ़ना पड़ता है, एक स्थान पर दूसरे को पसंद करना पड़ता है । कई बार जीव अमुक परिवार में जन्म लेने की इच्छा से बहुत दिनों तक प्रतीक्षा में बैठा रहता है, पर यदि उचित अवसर न आवे और परलोक का नियत काल समाप्त हो जाय तो उसे बहुत जल्दी कहीं जन्म लेने का प्रयत्न करना पड़ता है जैसे कुछ देर का मल पेट में जमा हो जाने पर उनके निकलने का काल आ जावे और बहुत जोर की टट्टी लगे तो मनुष्य को कहीं न कहीं उचित या अनुचित स्थान पर मल त्यागने के लिए मजबूर होना पड़ता है, उसी प्रकार यदि नियत काल समाप्त हो रहा हो वह जल्दी में कहीं न कहीं जन्म ले लेता है । ऐसे अवसरों पर वह मनचाही स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाता ।

गर्भ का शरीर और उसके अवयव यह पूर्णतः जीव की ही इच्छा से नहीं बनते । वह साझे का कार्य माता-पिता के रज-वीर्य और जीव की इच्छा इन सबके मिलने से ही नवीन शरीर बनता है । कुम्हार और मिट्टी इन दोनों में से एक भी दोषपूर्ण होगा तो इच्छित फल की प्राप्ति न होगी । माता-पिता का रज-वीर्य मिट्टी है और जीव कुम्हार । अनाड़ी कुम्हार अच्छी मिट्टी से भी खराब

वर्तन बनाता है और अच्छे कुम्हार का प्रयत्न खराब मिट्टी के कारण बेकार रहता है। जीव यदि उत्तम संस्कार वाला हो तो रज-वीर्य के भौतिक संस्कारों पर अपना उत्तम प्रभाव डालता है और कुछ न कुछ सुधार कर लेता है, इसके विपरीत कुसंस्कारी जीव उत्तम रज-वीर्य में भी कुछ न कुछ दोष मिला देता है। फिर भी माता-पिता के संस्कार पूर्ण रूप से मिट नहीं जाते, उनका बहुत बड़ा प्रभाव होता है। माता-पिता की भावनाओं का प्रभाव गर्भ शरीर पर पड़ता है, यदि जीव ऊँचे दर्जे का न हो तो उसे उन शारीरिक संस्कारों के क्षेत्र में ही रहना पड़ता है। देखा गया है कि व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुई संतान बहुधा दुष्ट होती है, क्योंकि गर्भाधान के समय माता-पिता का अन्तरात्मा पाप कर्म के कारण बड़ा व्यग्र रहता है, वही संस्कार गर्भ पर भी उतर जाते हैं।

कुछ जीव किन्हीं खास दुष्ट आदतों में बुरी तरह प्रवृत्त हो जाते हैं, वे किन्हीं इन्द्रियों का बार बार दुरुपयोग करते हैं। हर बार उन्हें नरक भोगना पड़ता है, पर वे आदत से इतने मजबूर होते हैं कि दण्ड भोगकर उसे भुला देते हैं और फिर उसी आदत का अनुसरण करने लगते हैं। ऐसे जीवों की वे इन्द्रियाँ कुछ जन्मों के लिए छीन ली जाती हैं। जैसे मध्य प्रान्त के मंत्री मि० खेर को कांग्रेस की सदस्यता से पांच साल के वंचित कर दिया गया था या जैसे बन्दूक का दुरुपयोग करने वालों से सरकार लाइसैंस जप्त कर लेती है, इसी प्रकार अदृश्य सत्ता यह आवश्यक समझती है कि इसकी अमुक इन्द्रियों को जप्त कर लिया जाय, ताकि वह आदत अगले जन्म में छूट जाय। जन्म से गूँगे, बहरे, अन्धे, अपाहिज, नपुंसक वे होते हैं, जिनने अपनी उन इन्द्रियों को अनुचित रीति से उपयोग करने की आदत डाल ली होती है। फिर भी यह भोग योनि नहीं है, जीवात्मा उनका भी जागृत होता है, और वे चाहें तो इच्छानुसार अन्धकार से प्रकाश की ओर चलने के लिए स्वतन्त्र हैं। कुछ मनुष्य इतने दुष्ट होते हैं कि वे जीवनभर अपनी सारी इन्द्रियों का दुरुपयोग ही दुरुपयोग करते हैं, उन्हें जड़ योनियों में जाना पड़ता है। वृक्षादि में जन्म लेना भोग योनि है। उनमें जीव तो रहता है पर क्रियाशील चेतना का अधिकांश भाग जप्त कर लिया जाता है। इन भोग योनियों में जन्म प्राप्त होना प्रभु की ही कृपा का चिह्न है, क्योंकि बिना जड़ योनि मिले उन दुष्ट संस्कारों को भुला सकना उस अज्ञानी के लिए कठिन है, जब तक कि वह पुरानी बुरी आदतों को भूल नहीं जाता। अब

उसकी उन्नति का क्रम यही से आरम्भ होता है । वृक्ष के बाद कीड़े-मकोड़े फिर पशु-पक्षियों की योनियाँ धीरे धीरे पार करता है, क्रमशः अधिक ज्ञान वाली योनि को अपनाता जाता है । डार्विन के उस मत को हम झूठा नहीं बताते जिसके अनुसार वह कहता है कि एक छोटे से कीड़े से बढ़ते बढ़ते जीव पशु-पंक्षियों की योनि धारण करता हुआ मनुष्य बनता है । हिन्दू धर्मशास्त्र इन योनियों की संख्या चौरासी लाख मानती है । भौतिक विज्ञानी उनकी संख्या इससे भी अधिक बताते हैं । जो हो यह निश्चित है कि दुष्ट कर्म करने वाले, अपनी इन्द्रियों को बार बार अनुचित रीति से प्रयोग करने वाले जड़ योनियों में जन्म लेते हैं और फिर वहाँ से उन्नति करते करते मनुष्य शरीर प्राप्त करने में हजारों लाखों शरीर बदलने पड़ते हैं । किसी योनि में उन्नति क्रम रुक गया तो वह योनि एक से अधिक बार भी ग्रहण करनी पड़ती है, जैसे फेल हो जाने पर विद्यार्थी को दूसरे वर्ष भी उसी कक्षा में पढ़ना पड़ता है ।

जड़ योनियों में जाने का दण्ड प्रायः उन्हीं जीवों को दिया जाता है जो अत्यन्त दुष्ट होते हैं और अपनी क्रियाशीलता को पतनोन्मुखी कर लेते हैं । साधारण पुण्य-पाप करते रहने वालों को दूसरी बार भी मनुष्य जन्म मिलता है क्योंकि लाखों योनियों में भ्रमण करके उसने जो इतना ज्ञान सम्पादन किया है, वह इतना उपेक्षणीय नहीं है कि जरा सी बात पर करोड़ों वर्षों तक भटकने के लिए उसी चक्कर में फिर पटक दिया जाय । मनुष्यों को बार बार यह अवसर दिया जाता है कि वे अपने अन्तिम उद्देश्य-परम पद को पावें ।

– भूत-प्रेत –

भूत-प्रेत कहने से ऐसे अदृश्य मनुष्यों का बोध होता है, जिनका स्थूल शरीर भी मर चुका है । लोगों का मोटा ख्याल है कि मरने के बाद आदमी भूत बन जाता है । यह बात मृतकों के ऊपर लागू नहीं, बहुत से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं, कुछ स्वर्ग चले जाते हैं, कुछ विश्राम की मधुर निद्रा में सो जाते हैं । बहुत थोड़े प्राणी ऐसे रहते हैं जिन्हें भूत बनना पड़ता है । आर्य ग्रन्थों में प्रेत

शब्द निन्दासूचक अर्थ के साथ व्यवहृत हुआ है । इसे पाप योनि माना गया है । तीन वासनाओं की उग्रता के कारण जीव परलोक यात्रा की स्वाभाविक शृंखला को तोड़ देता है और आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे लौट पड़ता है । सूक्ष्म लोक में विश्राम लेकर कृत कर्मों का फल भोगते हुए नवीन जन्म लेने के स्थान पर पिछले जन्म की ओर वापिस चलता है । पूर्व जीवन से अथवा किसी प्रियजन से अत्यधिक मोह होने के कारण या किसी ईर्ष्या, द्वेष में अनुरक्त होने पर मृतात्मा जहाँ का तहाँ ठहर जाता है । उसकी आंतरिक स्फुरणा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है पर वह किसी की नहीं सुनता और वहीं का वहीं अड़ा रहता है । जीवन भर की थकान, कर्मों का भार इन दोनों के कारण से वह बड़ा बेचैन रहता है । राग-द्वेष की इच्छाएँ, शरीरपात का लोभ, यह सब भी कुछ कम दुख नहीं देते । इसके अतिरिक्त स्थूल लोक के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण उसकी इन्द्रियों में भी स्थूलता का अधिक भाग आ जाता है, अतएव वह भोग पदार्थ की भी इच्छा करता है, यह सब विषम स्थितियाँ मिलकर प्रेत को बड़ा बेचैन बनाये रहती हैं । वह व्याकुल, पीड़ित, आतुर और दुखित होता हुआ इधर उधर मारा मारा फिरता है ।

ऐसी घटनाएँ हमारे सुनने में आती हैं कि अमुक स्थान पर भूत रहता है, बीमार कर देता है, पत्थर फैंकता है या और उपद्रव करता है । सहायता करने की अपेक्षा भूतों द्वारा हानि पहुँचाने के समाचार अधिक सुने जाते हैं । इससे प्रतीत होता है कि भूतों को मानसिक उद्वेग अधिक रहता है । इन्द्रिय लिप्सा या मोह शृंखला में बँधने के कारण ही वे इस दुर्गति को प्राप्त होते हैं । जिन्हें स्वादिष्ट भोजनों की चाटुकारिता और मादक द्रव्यों की आदत, नाच-तमाशों में अभिरुचि, मैथुनेच्छा विशेष रूप से होती है, जिन्होंने जीवित अवस्था में इन्द्रियों को इन खराब आदतों का गुलाम बन जाने दिया है, वे विवश होकर मृत्यु के उपरान्त भी इन्हीं वासनाओं में ग्रसित किन्हीं अन्य व्यक्तियों को देखते हैं, तो उनके माध्यम द्वारा अपनी तृप्ति करने के लिए उन पर अपना अड्डा जमा लेते हैं और उनकी इन्द्रियों द्वारा स्वयं तृप्ति लाभ करने की चेष्टा करते हैं ।

कहा जा चुका है कि भूतों की वासनाएँ बहुत नीची श्रेणी की होती हैं, इसलिए वे वेश्यालय, मदिरालय या ऐसे ही अन्य त्याज्य स्थानों में विशेष रूप से मँडराते रहते हैं । इन स्थानों से सम्बन्ध रखने वाले लोगों के शरीर पर यह

भूत गुप्त रूप से अपना अड्डा जमाते हैं । वे मनुष्य यद्यपि इनको पहचान नहीं पाते, पर इतना तो अनुभव करते ही हैं । त्याज्य स्थानों पर जाते ही उनकी वासना असाधारण रूप से उत्तेजित होती है ।

भूत होते तो हैं, पर बहुत ही कम संख्या में होते हैं । क्योंकि भूत योनि अस्वाभाविक योनि है, यह नियत क्रम के अनुसार नहीं मृतक के मानसिक विग्रह के कारण मिलती है । भूत कभी कभी अपना थोड़ा बहुत परिचय देते हैं, अन्यथा जन समाज से दूर किन्हीं एकांत स्थानों में अपनी वेदना छिपाये पड़े रहते हैं । विक्षिप्त दशा में होने के कारण वे कोलाहल से दूर रहना ही पसंद करते हैं । अपना परिचय प्रकट करने की इच्छा तो किसी को और विशेष स्थिति के कारण ही होती है ।

फिर भूतबाधा की इतनी चर्चा जो सुनी जाती है वह क्या है ? ऐसे प्रसंगों में भ्रम के भूत ही अलग रहते हैं । एक पुरानी कहावत है कि "शंका डायन, मनसा भूत" जिसे डर लग जाता है कि मेरे पीछे भूत पड़ा हुआ है उसके लिए घड़ा भी भूत बन जाता है । मन में भूतों की कल्पना उठी कि पेट में चूहे लोटे । शाम को भूतों की कहानी सुनी कि रात को स्वप्न में मसान छाती पर चढ़ा । एक बार दो मनुष्यों में शर्त हुई कि रात को १२ बजे अमुक मरघट में कील गाढ़ आवे तो पचास रु० मिलें । वह मनुष्य रात को मरघट में सो गया । रात अंधेरी थी, जल्दी में वह अपने कुर्ते के कोने को कील समेत गाढ़ गया, जब उठा तो उसे विश्वास हो गया कि मुझे भूत ने पकड़ लिया है । उसने डर के मारे एक चीख मारी और बेहोश होकर वहीं मर गया । इसी प्रकार अनेक बार अपना भ्रम ही भूत का रूप धारण करके दुख देता रहता है । ऐसे भूतों से मन का सावधान हुए विना छुटकारा नहीं मिलता । जिन अशिक्षित जातियों में अज्ञान और अशिक्षा घर किए हुए होती है, उनको भ्रम के भूत अधिक आते हैं किन्तु सुशिक्षित परिवारों में प्राय: उन्हें स्थान नहीं मिलता ।

मृत आत्माएँ जब प्रकट होती हैं, स्वरूप दिखाती हैं तो वे शरीर निर्माण की सामग्री को उन्हीं व्यक्तियों में से खींचते हैं जिन्हें ये प्रेत दिखाई दें । प्रेतों को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वे स्थूल परमाणुओं को खींच सकें । दिखाई देने की जब उनकी इच्छा होती है तो वे सामने वाले के शरीर की बहुत सी सामग्री खींचकर अपना रूप बना लेते हैं । ऐसे समय पर डाक्टरी परीक्षा करके देखा

गया है कि उस मनुष्य का शरीर हलका हो जाता है, तापमान और विद्युत प्रवाह घट जाता है, पाचन क्रिया और रक्त प्रवाह में मन्दता आती है । जिन लोगों ने क्षति को पूरा करने के गुप्त अभ्यासों को सीख लिया है, उनकी बात दूसरी है, साधारण लोगों को भूतों का बार बार दिखाई देना अच्छा नहीं है, इससे उन्हें ऐसे शारीरिक झटके लगते हैं, जिनके कारण वह खतरनाक दशा को पहुँचाते हैं ।

यह परमात्मा की छिपी हुई एक महती कृपा है कि मृत और जीवित मनुष्यों के मिलने में भय की यह एक बाधा खड़ी की गई है, यदि वह न होती हो मृत व्यक्ति भी घरों में ऐसे ही बैठे रहते जैसे चिड़िया, चूहे, चीटियाँ या खटमल भरे रहते हैं । इससे मृत और जीवितों का आगे का विकास रुक जाता और मोह बन्धनों में जकड़े हुए जहाँ के तहाँ पड़े रहते । प्रभु की इच्छा है कि सांसारिक झूठे रिश्तों के मोह-पास में अधिक न बँधे और अपना कर्तव्य पालन करता हुआ निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे । पीछे की भूमि पर से पांव उठा लेने के बाद ही आगे कदम बढ़ा सकते हैं । हमें पीछे की ओर नहीं आगे की ओर चलना चाहिए । भूत के पाँव उलटे होते हैं । इस कहावत का तात्पर्य यह है कि वह आगे के लिए नए सम्बन्ध स्थापित करने की अपेक्षा प्राचीन सम्बन्धियों के मोह जाल में बँधकर पीछे की ओर लौट रहा है ।

कभी कभी मनुष्य की शारीरिक बिजली के परमाणु स्वयं एक स्वतन्त्र प्रतिभा बन जाते हैं । स्वभावतः आप किसी घर में घुसते ही वहाँ के निवासियों की स्थिति जान सकते हैं, क्योंकि वहाँ रहने वालों के मानवीय तेज उस वातावरण में मँडराते रहते हैं और आपके मानसिक नेत्र इस बात को आसानी से पहचान लेते हैं कि यहाँ क्या वस्तु भरी हुई है । जिन स्थानों पर कोई भयंकर कार्य हुए हों वहाँ मुद्दतों तक वैसा ही वातावरण बना रहता है । अग्नि काण्ड, भ्रूण हत्या, कालादि ऐसे दुष्कर्म हैं जिनके कारण उस स्थान के ईंट, पत्थर भी मूक वेदना से सिसकते रहते हैं । सताये हुए प्राणी की व्यथा साकार बन जाती है और जागृत या स्वप्न अवस्था में वहाँ के निवासियों को डराती है । कई मकानों को भुतहा समझा जाता है । वहाँ रहने वालों को भूत दिखाई देते हैं । ऐसे स्थानों पर किसी के अत्यन्त हर्ष, द्वेष, क्रोध, दुख या ममता की साकार प्रतिमाएँ ही प्रायः अधिक पायी जाती हैं, क्योंकि वास्तविक भूत कोलाहल से कुछ दूर और एकांत स्थानों में ही रहना अधिक पसंद करते हैं ।

छोटी श्रेणी के भूत केवल मानसिक आघात पहुँचा सकते हैं, डरा देना या बीमार कर देना यह उनके बस की बात है। निर्बल शक्ति होने के कारण वे न तो अपना स्वरूप प्रकट कर सकते हैं और न किसी की अधिक क्षति कर सकते हैं। हाँ, छोटे बच्चों पर इनका आघात प्रहार हो सकता है। दुर्वासनाओं का बाहुल्य रहने के कारण यह दूसरों के साथ बुराई ही कर सकते हैं, भलाई नहीं। मध्यम श्रेणी के भूत जो अधिक बलवान और आतुर होते हैं, वे अपने नाना प्रकार के रूप धारण कर प्रकट हो सकते हैं। वस्तुओं को इधर से उधर उठाकर ला और ले जा सकते हैं, किसी मनुष्य के शरीर पर अधिकार करके उसकी इन्द्रियों से अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं तथा पागल या बीमार कर सकते हैं। ऊँचे श्रेणी के वीर ब्रह्म राक्षस, बेताल, पितर आदि कुछ सहायता भी कर सकते हैं, वे छोटे भूतों का आतंक हटा सकते हैं, वर्तमान और भूतकाल की गुप्त घटनाओं को बता सकते हैं। बहुत पूछने पर भविष्य के बारे में भी थोड़ा बहुत कहते हैं, पर वे बातें कभी कभी गलत भी सिद्ध होती हैं। श्राप-वरदान देना भूत के बस की बात नहीं है क्योंकि उसके लिए जितने आध्यात्मिक बल की जरूरत है, वह उनमें नहीं होता।

मनुष्य शरीर के एक एक कण में एक स्वतन्त्र सृष्टि रच डालने की शक्ति भरी पड़ी है। यदि यह कभी विशेष मनोबल के साथ निकले हों और फिर वह स्थान सूना पड़ा रहे तो बाधा रहित होने के कारण वे बीज बढ़ते-पकते और पुष्ट होते रहते हैं। हजारों वर्ष पुराने खण्डहरों में किन्हीं भूत-प्रेतों का परिचय मिलता है। हो सकता है कि वे आत्मा अब तक अनेक जन्म ले चुकी हों और उनके पूर्वजन्म के यह कण उन भावनाओं की तस्वीर की तरह अब तक जीवित बने हुए हों। लेकिन ऐसा होता खाली मकानों में ही है, क्योंकि वहाँ उन प्राचीन कणों की स्वतन्त्र वृद्धि करने में कोई बाधा नहीं आती। जो स्थान मनुष्यों के निवास केन्द्र रहते हैं, वहाँ उनकी गर्मी उन प्राचीन प्रतिमाओं को हटा देती या नष्ट कर देती है।

किन्हीं तेजस्वी आत्माओं के श्राप और वरदान एक स्वतन्त्र सत्ता बन जाते हैं और वह भी जीवित मनुष्यों की तरह हानि लाभ पहुँचाते हैं। शंकर के कोप से वीरभद्र गणों का प्रकट होना, दुर्वासा के क्रोध करने पर उनकी जटाओं में से एक राक्षसी का निकल कर अम्बरीष के पीछे दौड़ना, इस प्रकार के

मानसपुत्र भी मूर्त रूप हो सकते हैं । किसी की "हाय" इतनी साकार हो सकती है कि पिशाच की तरह सताने वाले का गला घोंटने लगे । वरदान, आशीर्वाद, शुभकामनाएँ चाहे हमें मूर्तिमान दिखाई न दें, पर वे देवता की तरह साथ रह सकती हैं और दुखद विपत्तियों में से भुजा पकड़ कर दृश्य या अदृश्य रूप से बड़ी भारी मदद मिल सकती है । कई मनुष्य कुएँ में गिरने पर भी बेदाग निकल आते हैं या ऐसी ही अन्य प्राणघातक विपत्तियों में से साफ बच आते हैं । हो सकता है कि कोई आशीर्वाद उस समय हमारे ऊपर अदृश्य कृपा प्रकट कर रहा हो । इस प्रकार दूसरों के भले-बुरे विचार भी भूतों की भांति अपने अस्तित्व का साकार या निराकार परिचय दे सकते हैं ।

इस प्रकार अनेक जातियों के भूत पिशाच संसार में मौजूद हैं, उसी प्रकार अदृश्य लोक में भी अनेक चैतन्य सत्ताएँ विद्यमान हैं । यह अकारण हम से नहीं टकराते, हमारे मानसिक विकार इन भूतों को अपनी ओर बुलाते हैं । भय, भ्रम, संदेह, आत्मिक निर्बलता, दुर्गुणों का बाहुल्य इन सब कारणों से भूतों को अधिकार करने का अवसर मिलता है । यदि आपकी आत्मा निर्बल नहीं है, आत्मा पापों के कारण भयभीत और शंकित बनी हुई नहीं है तो यह बेचारे भूत आपका कुछ भी अहित न करेंगे ।

- मृत्यु की तैयारी -

यह निर्विवाद है कि जो पैदा हुआ है, उसे मरना पड़ेगा । हमें भी मृत्यु की गोद में जाना है । उस महान यात्रा की तैयारी यदि अभी से की जाय तो इस समय जो भय और दुख होता है, वह न होगा "मृत्यु के अभी बहुत दिन हैं, या तब की बात तब देखी जायगी", ऐसा सोचकर उस महत्वपूर्ण समस्या को आगे के लिए टालते जाना अन्त में बड़ा दुखदायक होता है । मनुष्य जीवन एक महान् उद्देश्य के लिए मिलता है, लाखों करोड़ों योनियाँ पार करके बड़े समय और श्रम के बाद हमने उसे पाया है ऐसे अमूल्य रत्न का सदुपयोग न करके यों ही व्यर्थ गँवा देना, भला इससे बढ़कर और क्या मूर्खता हो सकती है ।

जीवन का महान् उद्देश्य है कि हम ईश्वर का साक्षात्कार करें, परमपद को पावें। किन्तु कितने हैं, जो इस ओर ध्यान देते हैं ? किसी को तृष्णा से छुटकारा नहीं, कोई इन्द्रिय भोगों में मस्त है, कोई अहंकार में इठा जा रहा है, तो कोई भ्रम जंजालों में ही मस्त है । इन विडम्बनाओं को उलझाते-सुलझाते यह स्वर्ण अवसर बड़ी तीव्र गति से व्यतीत होता जा रहा है, किन्तु हमारा भूसी फटकने का कार्यक्रम उसी गति से चलता जाता है । मृत्यु सिर के ऊपर नाच रही है, पल का भरोसा नहीं, न जाने किस घड़ी गला दबा दे, आज क्या क्या मनसूबे बाँध रहे हैं, हो सकता है कि कल यह सब धरे के धरे रह जावें और हमारा डेरा किसी दूसरे देश में ही जा गढ़े । ऐसी विषम बेला में अचेत रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है । पाठको ! अब तक भूले पर अब मत भूलो ! आंखें खोलो, सचेत होओ, जीवन क्या है ? हम क्या हैं ? संसार क्या है ? हमारा उद्देश्य क्या है ? इन प्रश्नों को उतना ही महत्वपूर्ण समझो, जितना कि रोटी को समझते हो । निरन्तर इन प्रश्नों पर विचार करने से आप उस मार्ग पर चल पड़ेंगे जिसे मृत्यु की तैयारी कहते हैं । जो काम कल करना है, उसका बन्धन आज से सोचना होगा, आपकी मृत्यु का समय निर्धारित नहीं है इसलिए उसकी तैयारी आज से, इसी क्षण से आरम्भ करनी चाहिए ।

अनासक्ति कर्मयोग के तत्व ज्ञान को समझकर हृदयंगम कर लेना मृत्यु की सबसे उत्तम तैयारी है । माया के बन्धन हमें इसलिए बाँध देते हैं कि हम उनमें लिपट जाते हैं, तन्मय हो जाते हैं । आप नित्य "मैं क्या हूँ" पुस्तक में बताये हुए साधनों की क्रिया कीजिए और मन में यह धारणा दृढ़ करके प्रति क्षण प्रयत्न करते रहिए कि "मैं अविनाशी, निर्विकार सच्चिदानन्द आत्मा हूँ । संसार एक क्रीड़ा क्षेत्र है, मेरी सम्पत्ति नहीं", यह विश्वास जितने जितने सुदृढ़ होते जाते हैं, मनुष्य के ज्ञान-नेत्र उतने ही खुलते जाते हैं । स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार का बड़े प्रेमपूर्वक पालन कीजिए, उन्हें अपनी सम्पत्ति नहीं, पूजा का आधार बनाइए । सम्पत्ति उपार्जन कीजिए पर किसी सद्उद्देश्य से, न कि शहद की मक्खियों की तरह कष्ट सहने के लिए । सब काम उसी प्रकार कीजिए जैसे संसारी लोग करते हैं, पर अपना दृष्टिकोण दूसरा रखिए । गिरह बाँध लीजिए, बार बार हृदयंगम कर लीजिए कि "संसार की वस्तुएँ आपकी वस्तु नहीं है । दूसरी आत्माएँ आपकी गुलाम नहीं है । या तो सब कुछ आपका है या कुछ भी

आपका नहीं है । या तो 'मैं' कहिए । या 'तू' कहिए । 'मेरा' 'तेरा' दोनों एक साथ नहीं रह सकते । बस, माया की सारी गाँठ इतनी ही है । योग का सारा ज्ञान इसी गाँठ को सुलझाने के लिए है ।'' पाप कर्म हम इसलिए करते हैं कि हमारा 'अहंभाव' बहुत ही संकुचित होता है । आप अपनी महानता को विस्तृत कीजिए, दूसरों को अपना ही समझिये, पराया कोई नहीं सब अपने ही हैं । यह अपनापन ऊँचे दर्जे का होना चाहिए, जैसा माता का अबोध पुत्र के प्रति होता है । वैसा नहीं जैसा चोर का दूसरों की तिजोरी पर होता है । सांसारिक जीवों में प्रभु की मूर्ति विराजमान देखिये और उनकी पूजा के लिए अपना हृदय बिछा दीजिए । स्त्री को आप दासी नहीं देवी मानिए, वैसी, जैसी मन्दिरों में विराजमान रहती है । पुत्र को आप वैसा ही महान् समझिये जैसा गणेशजी को मानते हैं । सांसारिक व्यवहार के अनुसार उनके प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पालन कीजिए । स्त्री की आवश्यकताएँ पूरी कीजिए और पुत्र की शिक्षा–दीक्षा में दत्तचित्त रहिए, पर खबरदार ! होशियार ! सावधान ! उन्हें अपनी जायदाद न मानाना । नहीं तो बुरी तरह मारे जाओगे, बड़ा भारी धोखा खाओगे और ऐसी मुसीबत में फँस जाओगे कि बस, मामला सुलझाने से नहीं सुलझेगा । संसार के समस्त दुःखों का बाप है–'मोह' । जब आप कहते हैं कि मेरी जायदाद इतनी है तो प्रकृति गाल पर तमाचा मारती है और कहती है कि मूर्ख ! तू तीन दिन से आकर इस पर अधिकार जमाता है, यह प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है । सोना–चाँदी तेरा नहीं है, यह प्रकृति का है, जिसे तू स्त्री समझता है, यह असंख्यों बार तेरी माँ हो चुकी होगी । आत्माएँ स्वतन्त्र हैं, कोई किसी का गुलाम नहीं । अज्ञानी मनुष्य कहता है–'यह तो सब मेरा है, इसे तो अपने पास रखूंगा ।' तत्वज्ञान की आत्मा चिल्लाती है–'अज्ञानी बालको ! विश्व का कण कण बड़ी द्रुतगति से नाच रहा है । कोई वस्तु स्थिर नहीं है, पानी बह रहा है, हवा चल रही है, पृथ्वी दौड़ रही है, तेरे शरीर में से पुराने कण भाग रहे हैं और नये आ रहे हैं, तू एक तिनके पर भी अधिकार नहीं कर सकता । इस प्रकार बहती हुई नदी का आनन्द देखना है तो देख, रोकने खड़ा होगा तो लात मारकर एक ओर हटा दिया जायगा ।'

दुख, विपत्ति, व्यथा और पीड़ा का कारण अज्ञान है । मृत्यु के समय दुख प्राप्त करने का, नरक की ज्वाला में जलने का, भूत–प्रेतों में भटकने का, जन्म–

मरण की फाँसी में लटकने का एक ही कारण है–अज्ञान, केवल अज्ञान । हे पाठको ! अन्धकार से प्रकाश की ओर चलो, मृत्यु से अमृत की ओर चलो । ईश्वर प्रेम रूप है, प्रेम की उपासना करो । स्वर्ग पैसे से नहीं खरीदा जा सकता, खुशामद से मुक्ति नहीं मिल सकती, मजहबी कर्मकाण्ड आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते । दूसरों की ओर मत तकिए कि कोई हमें पार कर देगा, क्योंकि वास्तव में किसी भी दूसरे में ऐसी शक्ति नहीं है । "उद्धरेत आत्मनात्मानम्" आत्मा का आत्मा से ही उद्धार कीजिए, अपना कल्याण आप ही करिए । अपने हृदय को विशाल, उदार, उच्च और महान् बना दीजिए । अहंभाव का प्रसार करके सबको आत्म दृष्टि से देखिये, अपनी अन्तरात्मा को प्रेम में सराबोर कर लीजिए और उस प्रेम का अमृत समस्त संसार पर बिना भेद भाव के छिड़किए, अपना कर्तव्य धर्मनिष्ठा पूर्वक पालन कीजिए, व्यवहार कर्मों में रत्ती भर भी शिथिलता मत आने दीजिए, पर रहिए "कमल पत्रवत्" । राजा जनक की तरह कर्मयोगी बनिए, अनासक्त रहिए, सर्वत्र आत्मीयता की दृष्टि से देखिए, अपनी महानता का अनुभव कीजिए और गर्व के साथ सिर ऊँचा उठा कर कहिए– 'सोऽहम्', वह मैं हूँ ।

आत्म ज्ञान द्वारा आप परलोक को परिपूर्ण आनन्दमय बना सकते हैं, मृत्यु फिर आपको दुख न देगी, वरन् एक खेल प्रतीत होगी, आप ऊँचे उठेंगे और महान् उद्देश्य को प्राप्त कर लेंगे । मृत्यु की तैयारी के लिए आज से ही आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का चिन्तन आरम्भ कर देना चाहिए । अपनी महानता का ज्ञान होते ही माया-मोह के सारे बन्धन टूट कर गिर पड़ेंगे और आनन्ददायक दृष्टि प्राप्त हो जायगी । अपने तुच्छ और स्वार्थपूर्ण विचार को त्याग कर अपनी महान् आत्मा के दरवाजे पर सिंहनाद कीजिए–"सोऽहम्", वह मैं हूँ ।

– भूत बाधा और उसका निवारण –

साधारण श्रेणी या निकृष्ट कोटि का जीवन बिताने वाले वे व्यक्ति जो लालसा, पीड़ा एवं मोहग्रस्त अवस्था में शरीर छोड़ते हैं, अक्सर प्रेत योनियों में पड़ जाते हैं यह पिछले पृष्ठों पर बताया जा चुका है । इस योनि में आत्मा की कोई विशेष उन्नति नहीं होती । अतृप्ति, द्वेष, कुढ़न आदि से प्रेरित होकर यह दूसरों को कष्ट देने, डराने या हानि पहुंचाने का प्रयत्न किया करते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो अत्यन्त मोह ग्रस्त होने के कारण प्रेत हुए हैं और अपने प्रियजनों के साथ रहना चाहते हैं, यह हानि तो कुछ नहीं पहुँचाते परन्तु अपनी वासनाओं को तृत करने के लिए कुछ न कुछ याचना करते रहते हैं । स्थूल मनुष्य शरीर की भांति इन प्रेतों का शरीर नहीं होता और न उन्हें अन्न, जल की आवश्यकता होती है । वायु रूप सूक्ष्म शरीर से अन्न, जल जैसी स्थूल चीजें खाई भी नहीं जा सकतीं । तो भी इनकी वासनाएँ जागृत रहती हैं और पूर्व जन्मों में अनुभव किए हुए इन्द्रिय भोगों को भोगना चाहती हैं ।

आपने देखा होगा कि मृत्यु शय्या पर पड़े हुए कुछ रोगी नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन माँगते हैं । वे चीजें उन्हें दी जाती है तो खाई एक आध तोले भी नहीं जातीं । करीब करीब ऐसी ही दशा इन प्रेतों की होती है, वे मनुष्य शरीर में भोगे हुए भोगों को भोगना चाहते हैं, पर जिस शरीर में हैं उनके द्वारा उनको भोगना सम्भव नहीं । वृक्ष के शरीर में जो आत्मा है वह पशु के शरीर के भोगों को नहीं भोग सकती और न कोई पशु उन भोगों को भोगने में समर्थ है जो वृक्षों को प्राप्त हैं । हर शरीर की स्वादेन्द्रियाँ प्रथक ढंग की होती हैं । इसलिए प्रेत इच्छा करते हुए भी मनुष्य शरीर के स्वादों को चखने में असमर्थ रहते हैं, इस असमर्थता का अनुभव करके वे और भी अशान्त रहने लगते हैं और झुँझलाहट को अपने निकटस्थ व्यक्तियों पर निकालते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं ।

हाँ, कभी कभी कोई वृद्ध उनका अपवाद करते देखे जाते हैं । मृत्यु के

समय उनकी समझ परिपक्व होती है, बच्चों के लिए उनकी ममता, स्नेह, सहायता व क्षमा का भाव होता है, इन्द्रियाँ भी इनकी अधिकांश में तृप्त होती हैं। ऐसे प्रेत जिस घर में रहते हैं, उस घर में लोगों की सहायता किया करते हैं, आपत्तियों से सचेत करते हैं और कष्टों के निवारण में जो कुछ वे थोड़ी बहुत सहायता पहुँचा सकते हैं, पहुँचाते हैं। इनके द्वारा जानबूझकर कोई ऐसा कार्य नहीं किया जाता जो सम्बन्धियों को हानिकारक हो।

मन की एक प्रवृत्ति ऐसी है कि यदि वह स्वयं जिस इच्छा को पूर्ण नहीं कर पाता तो उसे दूसरों से पूर्ण कराकर स्वयं तृप्ति का आनन्द अनुभव करता है। बड़ा हो जाने पर आदमी छोटे खिलौने से लोक लाज़ की वजह से नहीं खेलता, परन्तु वह अपने बच्चों के लिए अच्छे अच्छे खिलौने लाता है और उन्हें खेलते देखकर अपनी तृप्ति का अनुभव करता है। इसी प्रकार प्रेत अपनी वासना को तृप्त करने के लिए दूसरों को भोजनादि कराने का आदेश करते हैं और उनकी तृप्ति से स्वयं भी संतोष लाभ करते हैं। अक्सर देखा गया है कि किसी ब्राह्मण या अमुक व्यक्ति को अमुक भोजन कराने की प्रेत लोग माँग किया करते हैं, इसका यही कारण है। उनकी आज्ञानुसार कार्य हुआ है और उनके बताए हुए अमुक व्यक्तियों ने तृप्ति लाभ की है। यह देखकर उन्हें संतोष हो जाता है और उद्विग्नता घट जाती है।

भूत-प्रेतों का श्रेणी विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है- (१) काल्पनिक भूत-जिन्हें मनुष्य भय, आशंका, विश्वास एवं संकल्प द्वारा स्वयं उत्पन्न करता है, (२) रोग का भूत, (३) मृत जीवित व्यक्तियों के शरीर-विद्युत परमाणु जो पुनः जागृत होकर अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता बना लेते हैं, (४) इन्द्रिय भोगों में अमृत लालसा, वासना, प्रतिहिंसा से जलते हुए पिशाच, (५) अपने वैभव, स्थान, कुटुम्ब या मित्रों में अतिशय आसक्त, (६) तांत्रिक साधना द्वारा सिद्ध की हुई संकल्प प्रतिमाएँ-छाया पुरुष, यक्षिणी आदि, (७) जीवन मुक्त आत्माएँ, जो सत्कर्मों में प्रेरणा और सहायता किया करती हैं। इन सात श्रेणियों में सभी प्रकार के भूत-प्रेत आ जाते हैं। इनमें आरम्भिक पाँच तो मनुष्यों को हानि ही हानि पहुँचाते हैं। पाँचवें के द्वारा हानि और लाभ दोनों हो सकते हैं। छटवें, सातवें केवल लाभ हीं पहुँचाते हैं। अब इनके अस्तित्व सम्बन्धी कुछ परिचय और उनसे छुटकारा पाने के कुछ उपाय बताये जाते हैं।

(१) काल्पनिक भूत-भय का मूर्त स्वरूप है । आशङ्का और भय जब दृढ़ीभूत होकर विश्वास का रूप धारण कर लेते हैं, तो उनकी आकृति दिखाई देने लगती है । हिप्नोटिज्म द्वारा तन्द्रित किए व्यक्ति को ऐसी वस्तुएँ दिखाई देने लगती हैं जिनका वास्तव में कोई अस्वित्व नहीं होता । लकड़ी को आदमी और आदमी को लकड़ी समझने का भ्रम हो जाता है । भय के कारण बुद्धि भ्रमित हो जाती है और आशङ्का की छाया को इन्द्रियाँ अनुभव करने लगती हैं । आँखें देखती हैं कि भूत सामने खड़ा है, कान सुनते हैं, वह अमुक बात कर रहा है या शब्द कर रहा है । त्वचा अनुभव करती है कि पकड़ रहा है, छू रहा है या भीतर घुस रहा है । वह अनुभव उसे बिलकुल सत्य प्रतीत होते हैं जब वे विपन्न अवस्था में हैं तो जो कुछ भी अनुभव होगा, वह सत्य प्रतीत होगा । काल्पनिक भूतों की पीड़ा से जो पीड़ित हैं, उन्हें ऐसा जरा भी नहीं लगता कि हम भ्रम ग्रस्त अवस्था में हैं । वे तो अपने अनुभवों को बिलकुल सत्य के रूप में ही मानते हैं । जब भी इनका भय और आशङ्का जागृत होने का अवसर पाते हैं, तभी वह भूत सामने आ खड़ा होता है और तरह तरह के उत्पात करता है ।

(२) मस्तिष्क सम्बन्धी कोई खराबी हो जाने पर पागलपन उन्माद सरीखे रोग उत्पन्न होते हैं । जिसके कारण मनुष्य की चेष्टा, आकृति, आदत, वाणी तथा रुचि विचित्र हो जाती है । वह बेढंगी बातें करता है और विचित्र प्रकार के आचरण करता है । आयुर्वेद शास्त्रों में उन्माद रोगों की विशद व्याख्या की गई है । उनमें भूत-पिशाच आदि के उन्मादों को रोगी श्रेणी में लिया गया है । कोई अतृप्त इच्छा गुप्त मन में दबी पड़ी रहे तो वह समय पाकर मृगी, मूर्छा आदि के रूप में उभरती है । कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में पड़ा हुआ हो जिसे वह पसंद नहीं करता, परन्तु उस दशा में से निकलने का उसे अवसर नहीं तो ऐसी झुँझलाहट भरी स्थिति के कारण मस्तिष्कीय ज्ञान तन्तु बहुत उलझ जाते हैं, भूतावेश जैसी स्थिति हो जाती है । देखा गया है कि कई किशोर लड़कियाँ अपनी ससुराल जाती हैं, परन्तु वहाँ का वातावरण उन्हें पसंद नहीं आता, ऐसी दशा में उद्विग्नता और लाचारी का क्षोभ उनके मानसिक तन्तुओं पर घातक असर डालता है, जिसके कारण भूत बाधा जैसे लक्षण उसमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं । अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने की एक वृत्ति मनुष्य में पाई जाती है, इससे प्रेरित होकर कई मनुष्य झूठ मूठ भूतावेश का बहाना करते हैं अथवा

ऐसे किस्से गढ़ लेते हैं । यह भी एक प्रकार की मानसिक कमजोरी है ।

अप्रसन्न और असन्तुष्ट लोग अपने परिवार को परेशान करने, नुकसान पहुँचाने और पैसा खर्च कराने के लिए भूतबाधा की सृष्टि करते देखे गये हैं । चालाक नौकर, बदमाश पड़ौसी, ठग, ओझा आदि की करतूतें भी भूत उन्माद के समान ही आडम्बर खड़ा कर लेती हैं । यह सामाजिक रोग है ।

(३) पिछली फसल में जो अनाज पैदा हुआ था, उसके कुछ पौधे अगली फसल में भी उग आते हैं । कारण यह है कि पिछली फसल में जो दाने खेत में गिरे थे, वे नष्ट नहीं हुए वरन् समय पाकर उग आये । इस प्रकार किसी मकान में कोई असाधारण (नीच या ऊँच) स्वभाव का मनुष्य रहा हो अथवा कोई असाधारण घटना घटी हो तो सम्बन्धियों के सूक्ष्म शरीर के कुछ परमाणु उसमें विशेष रूप से चिपक जाते हैं । यह परमाणु अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर पुष्ट होते हैं और एक अदृश्य व्यक्ति जैसी स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेते हैं ।

एक घर में बहुत समय तक एक वेश्या रही, पीछे वह चली गई, उसी मकान में कुछ दिन बाद एक सदाचारी भद्रपुरुष का रहना हुआ । वे बहुत संयमी, ब्रह्मचारी और अच्छे विचारों के थे । किन्तु जिस दिन से उस मकान में रहे, उसी दिन से उन्हें नित्य स्वप्नदोष होने लगा । स्वप्न में उन्हें एक सुन्दर स्त्री दिखाई पड़ती थी और उसी की कुचेष्टाएँ उन्हें गिरा देती थीं । एक दिन वे बाजार में जा रहे थे तो देखा कि साक्षात् वही स्त्री कोठे पर बैठी हुई है जो उन्हें रात में दिखाई पड़ती है, वे बहुत असमंजस में पड़े कि यह क्या मामला है । वे घबराये हुए हमारे पास आये, हमें सारी घटना उन्होंने बताई । तलाश करने पर मालूम हुआ कि वह वेश्या उस मकान में रहती थी । हमने उन भद्रपुरुष को बताया कि उस वेश्या के कुछ विद्युत कण उस मकान में रह रहे हैं और परिस्थितियों के कारण उन्होंने अपनी अलग सत्ता कायम कर ली है, वे एक प्रकार से जीवित व्यक्ति का प्रेत बन गये हैं । वे ही इस तरह कार्य करते हैं । आप उस मकान को खाली कर दीजिए । उन भद्रपुरुष ने मकान छोड़ कर दूसरा ले लिया, इसके बाद न उन्हें स्वप्नदोष हुआ और न कभी वह स्त्री दिखाई दी ।

ऐतिहासिक स्थानों या तीर्थ स्थानों में कभी कभी वहाँ के प्राचीन पुरुषों की झलक दिखाई दे जाती है । वृन्दावन की सेवाकुञ्ज में कभी कभी

श्रीकृष्णजी की एक अस्फुट सी झाँकी लोगों को हुई है, किन्हीं ने रासलील होती देखी है । ऐसे दृश्यों का कारण यह है कि ऊँची आत्माओं का तेज बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है, उस तेज के विद्युत कण हजारों वर्षों तक वहाँ बने रहते हैं और समय समय पर उनका मूर्त रूप देखने में आता रहता है । कुरुक्षेत्र इन्द्रप्रस्थ आदि के ऐतिहासिक स्थानों में किन्हीं को महाभारत कालीन पुरुषों क झाँकियाँ हुई हैं । तीर्थों के वातावरण में एक विशेषता यह होती है कि वहाँ जे प्रख्यात मनस्वी महापुरुष हुए हैं, उनका प्रभाव किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है और वह अनुकूल मनोभूमि वाले लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करता है ।

स्पष्ट है कि जहाँ मनुष्य शरीरों का कुछ असाधारण प्रयोग हुआ है, वह भूत बाधा जैसी गड़बड़ें बहुत देखी जाती हैं । श्मशान, कब्रिस्तान, फाँसीघर जिवहखाने आदि स्थानों का वातावरण बड़ा आतंकित रहता है । इन स्थानों मे शरीर यन्त्र का असाधारण उपयोग किया जाता है, जिसके कारण उन शरीरों के कुछ परमाणु वहाँ जम जाते हैं और समय समय पर अपना अस्तित्व प्रकट करते हैं । उन स्थानों की समीपता में अपने वालों को भय और आतंक उत्पन्न करने वाले कई प्रकार के अनुभव होते हैं । जिन घरों में हत्याएँ होती हैं, दुष्ट कर्म होते हैं, उनमें भी ऐसा ही भयावह वातावरण बना रहता है । इन भयंकरताओं की मूल में वे परमाणु हैं जो भूतपूर्व व्यक्तियों के शरीर से असाधारण प्रतिक्रिया द्वार निकले हैं । वे आत्माएँ भले ही मर चुकी हों, दूसरी जगह जन्म ले चुकी हों य जीवित हों, जो भी स्थिति हो पर उनके सूक्ष्म शरीर से निकले हुए यह प्रे स्वतन्त्र रूप से बहुत काल तक अपना अस्तित्व बनाये रहते हैं और परिचय दे रहते हैं । इन परमाणु प्रेतों द्वारा भी वैसे ही विस्मयजनक भयंकर कार्य होते हैं जैसे अन्य प्रकार के भूतों द्वारा हो सकते हैं ।

(४) इन्द्रिय भोगों से अतृप्त वासना ग्रस्त प्रेत अपने प्रियजनों पर विशे रूप से आतंक जमाते हैं क्योंकि उनका पहले से ही उनसे परिचय होता है औ अपने पूर्व अनुभव के आधार पर वे सोचते हैं कि इच्छाएँ इनके द्वारा पूरी ह सकती हैं । खाने-पीने की चीजों की उनकी इच्छा अधिक होती है, कोई अप लिए चबूतरा, वृक्ष आदि रहने योग्य स्थान चाहते हैं, किन्हीं को दान-पुण्य, ती यात्रा, देवदर्शनादि शुभ कर्मों में रुचि होती है । कोई अपनी आज्ञा पालन करा दे

अपने अहंकार को पूरा करना चाहते हैं । जो भी उनकी इच्छा हो उसे पूर्ण कराने के लिए वे उपद्रव करते हैं और जब उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है तो संतुष्ट हो जाते हैं । इनके निवास स्थानों को अपवित्र करने वाले, वहाँ विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाले ही अक्सर उनके क्रोध भाजन बनते हैं । मध्याह्न या मध्यरात्रि के समय उनका क्षोभ बढ़ता है, इस समय में निकटस्थ व्यक्ति पर अकारण ही वे आक्रमण कर बैठते हैं । पिछले जन्म का बदला चुकाने के लिए उनके उत्पात होते हैं ।

(५) अपने प्रियजनों में अतिशय मोह करने वाले मनुष्य मृत्यु के उपरान्त अपनी प्रबल मोह भावना के वशीभूत होकर प्रेत योनि पाते हैं और अपने उसी घर के आस पास फिरते रहते हैं । अपने बाल-बच्चों को हँसता-खेलता देखकर प्रसन्न होते हैं । वृद्धजन अक्सर इस कोटि में आते हैं, वे किसी को हानि नहीं पहुँचाते वरन् समय समय पर कुटुम्बियों को आपत्तियों से सचेत किया करते हैं और विपत्ति निवारण में सहायता दिया करते हैं । इन्हें पितर कहते हैं ।

जो तरुण अवस्था में मृत्यु को प्राप्त होते हैं और जिनकी लालसाएँ अत्यन्त उग्र एवं स्वार्थपूर्ण होती हैं, वे अपने प्रियजनों को अपनी जैसी प्रेत अवस्था में ले जाकर साथ रखने की इच्छा करते हैं और उसी भावना से वे अपने प्रियजनों को मार डालने का भी आयोजन करते हैं । तरुण स्त्रियाँ जो अपने बाल-बच्चों को छोटा केवल अनाश्रित छोड़कर मर जाती हैं, वे इस प्रकार के कार्य अधिक करती हैं, अपने बच्चों को अपने साथ रखने की मोहमयी लालसा उनसे इस प्रकार का कार्य कराती है ।

(६) तान्त्रिक साधनाओं द्वारा छाया पुरुष, भैरवी, भवानी, बैताल, पीर, जिन्न, पिशाचनी आदि की सिद्धि की जाती है, उन्हें वश में किया जाता है । उनकी सहायता से अमुक वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं, अमुक कार्य पूरे किए जाते हैं और अमुक व्यक्तियों को अमुक प्रकार की हानियाँ पहुँचायी जाती हैं । सेवक की तरह यह संकल्प प्रतिमाएँ काम करती हैं । जो भूत, पिशाच, देव इस प्रकार वशीभूत किए जाते हैं वे साधक की निजी मानसिक और शारीरिक शक्तियों के मन्थन से उत्पन्न हुए एक प्रकार के अदृश्य प्राणी होते हैं । शारीरिक विद्युत के परमाणु अवसर पाकर अपने आप एक स्वतन्त्र इकाई बन जाते हैं किन्तु यह देव

दानव तांत्रिक विधियों से उत्पन्न किये जाते हैं । इस प्रकार ये अपने ही "मानस पुत्र" होते हैं परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि वे पहले से ही कोई स्वतन्त्र सत्ता रखते थे । वास्तव में उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता पहले से नहीं होती है वरन् साधक उन्हें स्वयं उत्पन्न करता है । जितनी दृढ़ उसकी श्रद्धा और साधना होती है, उसी अनुपात से इन देव दानवों की कार्य शक्ति होती है । दुर्बल मानसिक बल वाले ऐसी कोई प्रतिमा वशीभूत कर लें तो भी उसकी कार्य शक्ति बहुत ही तुच्छ रहेगी, उसके द्वारा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य न हो सकेगा । हाँ, जितना मानसिक बल बढ़ा-चढ़ा है उसका देव दानव भी सशक्त होगा । एक की सिद्ध-प्रतिमा दूसरी से लड़ भी जाती है और जो बलवान होती है वह दूसरे को परास्त करके अपना कार्य पूरा करती है । मारण आदि की भयंकर क्रियाएँ इन संकल्प पुत्रों द्वारा ही की जाती हैं ।

(७) जीवन मुक्त आत्माओं के बारे में पूर्व में स्वतन्त्र रूप से बहुत कुछ कहा जा चुका है । यह आत्माएँ मनुष्यों को सदा शुभ मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करती हैं । शुभ कर्म करने वालों पर प्रसन्न रहती हैं । अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण लोगों को उन्नति के कार्यों में सहायता दिया करती हैं । इनके द्वारा जन समाज का हित ही होता है, अनहित नहीं । अन्तरिक्ष में ऐसे अनेक सिद्ध महात्मा तथा महापुरुषों के सूक्ष्म शरीर उड़ते रहते हैं और वे समय समय पर मानव प्राणियों को सत्कर्मों में सहायता प्रदान किया करते हैं ।

उपरोक्त सात प्रकार के प्रेतों का परिचय जानने के उपरान्त पाठक इस नतीजे पर पहुँचे होंगे कि जीवनमुक्त आत्माओं के अतिरिक्त छःहों प्रकार के प्रेत हमें लाभ कम और हानि अधिक पहुँचाते हैं । लाभ का विषय ऐसा है कि उस पर विचार करने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि लाभ किसी को बुरा नहीं लगता । यदि किन्हीं प्रेतों के द्वारा कुछ लाभ पहुँचता है तो उसके लिए किसी को कुछ चिन्ता नहीं होती । चिन्ता तब उत्पन्न होती है जब किसी को उनके द्वारा क्षति पहुँचती है । जब प्रेतों द्वारा किसी प्रकार की हानि पहुँचती है तब उसका निवारण करने के लिए हमें चिन्तित होना पड़ता है ।

अब यह जानना है कि प्रेतों के उत्पात से किस प्रकार अपना बचाव किया जा सकता है । यद्यपि ऐसे उत्पात बहुत ही कम होते हैं तो भी जिन्हें उस अवस्था में पड़ जाने का दुर्भाग्य प्राप्त होता है उनके भय कष्ट और दुख का

ठिकाना नहीं रहता । अनुभव से ज्ञात हुआ है कि जितने भी भूत उत्पात होते हैं उनमें से दो तिहाई भय एवं कल्पना से उत्पन्न हुए भूतों के होते हैं । अपनी मानसिक निर्बलता के कारण लोग आशंका और भय की मूर्तिमान प्रतिमा तैयार कर लेते हैं और उसी से भयभीत होते रहते हैं । अज्ञान, कुसंस्कार, आत्मिक निर्बलता और अन्ध-विश्वास के कारण काल्पनिक भूत उत्पन्न होते हैं और उन्हीं लोगों को डराते-धमकाते हैं । यदि साहस और आत्म विश्वास का अभाव न हो और भय दिखाने वाली बात की गम्भीरतापूर्वक खोज करने की आदत डाली जाय तो इन काल्पनिक भूतों का अस्तित्व नष्ट हो सकता है । चूहों की खड़बड़ को लोग भूतों की करतूत मान बैठते हैं । अँधेरे में झाड़ी की टहनियाँ यदि हाथ पाँव से दिखाई दे रहे हों या केंचुली की मिट्टी बिखर रही हो तो मसाल जलाकर भूतों की बरात निकलती समझी जाती है । घर में बन्दर ने ईंटें या पत्थर फेंक दिए हों तो वह भी भूत की हरकत समझी जाती है । कोई मसखरा या धूर्त व्यक्ति ऐसे आडम्बर रच डालता है, जिसे सहज ही भूत की माया समझा जा सकता है । इस प्रकार की घटनाओं की गम्भीरतापूर्वक छानबीन की जाय तो कारण का पता चल जाता है और भ्रम से सहज ही छुटकारा मिल जाता है ।

मिथ्या भ्रमों के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन किया जाय और मिथ्या विश्वासों को लोगों के मन से हटा दिया जाय तो भूतों की दो तिहाई बाधा मिट सकती है । शेष एक तिहाई में आधा भाग मनुष्य शरीर के निकले हुए विद्युत परमाणुओं की स्वतन्त्र सत्ता का होता है । इनका प्रभाव किसी स्थान विशेष में होता है, एक नियत घेरे के अन्दर ही यह अपना प्रभाव दिखा सकती हैं । वह भी तब जब कोई अकेला आदमी वहाँ सुनसान समय में रहे । बहुत से मनुष्यों की भीड़ में उनकी शक्ति निर्बल हो जाती है । इन परमाणु प्रतिमाओं में बहुत थोड़ी ताकत होती है । अपना रूप दिखा देना, स्वप्न या तन्द्रावस्था में पड़े हुए व्यक्ति का अपना परिचय देना, कोई शब्द या दृश्य प्रकट करना आदि कार्यों द्वारा उनका अस्तित्व दिखाई पड़ता है, उससे डर कर कोई स्वयं ही अपनी हानि कर ले यह बात दूसरी है वैसे उन परमाणु प्रतिमाओं में ऐसी शक्ति नहीं होती कि किसी को कुछ हानि-लाभ पहुँचा सकें । सैकड़ा पीछे पन्द्रह बीस घटनाएँ इन प्रतिमाओं के द्वारा होती हुई देखी जाती हैं ।

जिन घरों में इस प्रकार की गड़बड़ें दिखाई पड़ें उन्हें कई बार अच्छी तरह

चना, गोबर, फिनायल आदि से साफ करना चाहिए। नीम की पत्तियाँ घरों में जलाकर बाहर से दरवाजे बन्द कर देना चाहिए। ताकि पत्तियों का धुआँ घर में भर जाय। इसके अतिरिक्त हवन, यज्ञ आदि का भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। जागरण, धार्मिक गीत-वाद्य, संकीर्तन, शंख-ध्वनि से इस प्रकार की अणुमूर्तियों को हटाने में सहायता मिलती है।

प्रेतोन्माद के मानसिक रोग की चिकित्सा आरम्भ करते हुए रोगी को बल-वीर्यबर्द्धक भोजन देना चाहिए। ब्राह्मी, शतावरि, आँवला, सालभ, गोरखमुण्डी, शंखपुष्पी, बच प्रभृति औषधियाँ सेवन करना, ब्राह्मी तथा आँवले का तेल सिर एवं शरीर पर मलवाना हितकर रहता है। जिस स्थान से रोगी का जी उचट रहा हो, वहाँ से हटाकर कुछ दिन के लिए इच्छित स्थान में रखना भी उचित है। जहाँ तक सम्भव हो उसे सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया जाय। सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करने और मस्तिष्क को शक्ति देने वाली चीजें सेवन कराने से ऐसे रोगी बहुत अच्छे हो जाते हैं।

जिन्हें ऐसा विश्वास जग गया हो कि मुझे किसी बलवान भूत ने पकड़ रखा है और अब मुझ से कुछ नहीं हो सकता। ऐसे निर्बल स्वभाव वाले व्यक्तियों के सामने कुछ ऐसा आडम्बर रचना होता है जिससे प्रभावित होकर वे यह विश्वास कर लें कि हमारे ऊपर जो भूत था वह संतुष्ट कर दिया या मार भगाया गया। काँटे से काँटा निकालने की और विष से विष मारने की नीति से यहाँ काम लेना पड़ता है, इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। जिनके अन्तर्मन में यह विश्वास गहरा उतर चुका है कि मेरे ऊपर भूत चढ़ा है, उसका भ्रम यह कहने मात्र से ही नहीं मिट सकता कि-'तुम्हें कुछ नहीं है, केवल तुम्हारी काल्पनिकता और मानसिक निर्बलता है।' रोगी इस बात को नहीं मान सकता, उसे इस पर विश्वास नहीं हो सकता। हर व्यक्ति की मानसिक स्थिति भिन्न होती है। जो लोग अपने विश्वास के आधार पर भूतग्रस्त हो जाते हैं उनमें भावुकता की मात्रा अधिक होती है, ऐसे लोगों को नाटकीय ढंग से कुछ अद्भुत विचित्र और आतंक उत्पन्न करने वाली पद्धति से अच्छा किया जाता है।

यूरोपीय रीतियों के अनुसार प्लेनचिट ऑटोमेटिक राइटिंग करने की पद्धति का हमारे देश में भी प्रचार हो गया है। पहले हम भी उसे ठीक समझते

थे, परन्तु नये अनुभवों के आधार पर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह अपनी ही मानसिक शक्तियों का एक खेल है । इन उपायों द्वारा किसी मृतात्मा के संदेश आना बहुत सन्देहास्पद है । इसलिए इन साधनों का प्रयोग करने के लिए हम अपने पाठकों को सलाह नहीं दे सकते । अपनी ओर से भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में अधिक रुचि लेना भी ठीक नहीं । हाँ किसी को अनायास भूत बाधा का शिकार होना पड़े तो उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है ।

卐

मुद्रक : युग निर्माण प्रेस, मथुरा

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

–हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

–शरीर को भगवान का मन्दिर समझकर आत्म- संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगें।

–मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिये स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।

–इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत् अभ्यास करेंगे।

–अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

–मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।

–समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

–चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

–अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

–मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

–दूसरों के साथ वह व्यवहार न करेंगे, जो हमें अपने लिये पसन्द नहीं।

–नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।

–संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिये अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

–परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्व देंगे।

–सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नव- सृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।

–राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।

–मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा।

–"हम बदलेंगे-युग बदलेगा", "हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा", इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।